प्रातः स्मरण माला

उत्तिष्ठत जाग्रत

प्राप्य वरान् निबोधत ।

(कठ. उ. १-३-१४)

[उठिये, जागिये और प्रवीण श्रेष्ठों से ज्ञान सम्पादन कीजिये]

लेखक

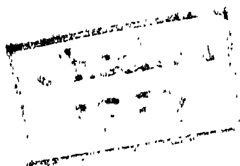
म. दा. गाडगील

सेवा-निवृत्त इंजीनियर हैदराबाद (दक्षिण)

दि. २५-९-१९५५

मूल्य बारह आने

प्रातः स्मरण माला



उत्तिष्ठत जाग्रत

प्राप्य वरान् निबोधत ।

(कठ. उ. १-३-१४)

[उठिये, जागिये और प्रवीण श्रेष्ठों से ज्ञान सम्पादन कीजिये]

लेखक

म. दा. गाडगील

बी. ए. एल. सी. ई. एम. आय्. ई.

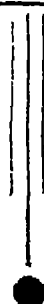
सेवा निवृत्त इंजीनियर हैदराबाद (दक्षिण)

दि. २५-९-१९५५

मूल्य बारह आने

लेखक तथा प्रकाशक
म. दा. गाडगील, इंजीनियर
आनन्द विलास, काचीगुडा
हैदराबाद (दक्षिण)

यह पुस्तक उपर्युक्त प्रकाशक से प्राप्त की जा सकती है



मुद्रक
हिन्दी प्रेस
हिन्दी प्रचार सभा
हिन्दी मार्ग, हिन्दी भवन
नामपल्ली स्टेशन रोड हैदराबाद-द.

विषय सूची

समर्पण

भारतवर्ष की स्वतंत्रता के लिए जिन महानुभावों ने अविरत परिश्रम के साथ आत्मसमर्पण किया है और अनेक जो आज भी भारतमाता की सुरक्षा तथा समृद्धि के लिए प्रयत्नशील हैं, उनकी सेवा में सादर सस्नेह भेंट ।

म. दा. गाडगील

परमात्मा को नमन

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

(श्वेताश्वतर उप. ६–११)

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्ताम्
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्चहस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥

(भागवत स्कं. ४ अ. ९ श्लो. ६)

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय ।
नमः सौख्यकन्दाय मुक्तिप्रदाय नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥ १ ॥

त्वमेकः शरण्यस्त्वमेको वरेण्यस्त्वमेको जगत्पालकः स्वप्रकाशः ।
त्वमेको जगल्लीलया निर्मिमीषे त्वमेको जगत्सुव्यवस्थं करोषि ॥ २ ॥

भयानां भयं भीषणो भीषणानां गतिः प्राणिनां पावनः पावनानाम् ।
महोच्चैः पदानां नियन्ता त्वमेकः परेषां परो रक्षको रक्षकाणाम् ॥ ३ ॥

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥ ४ ॥

प्रातः स्मरण माला



लेखक का निवेदन

हमारे प्रिय भारत में प्रातः स्मरण तथा अभिवादन मंगलाचरणादि पाठों की प्रथा, स्मरणातीत काल से चली आई है। एतत्सम्बंधीय स्तोत्रों तथा प्रार्थनाओं से हमारे प्रत्येक दिवस का श्रीगणेश अतीत काल में हुआ करता था और आज भी कुछ-कुछ स्थानों में हुआ करता है। यह प्रथा हमारी सनातन संस्कृति की एक अंगभूता आवश्यक वस्तु है, जिसकी प्रभावोत्पादकता और उपयोगिता अमान्य नहीं की जा सकती। उदाहरणार्थ, कहा जा सकता है, कि प्रातः स्मरण एक सुन्दर इन्जेक्शन है जिसके प्रभाव से दुर्भावनाओं के कीटाणु मर जाते हैं, और सद्भावनाओं का अनुप्राणन तथा संजीवन हुआ करता है। पर भेद इतना है कि इन्जेक्शन प्रायः विषैली औषधि का हुआ करता है और उसमें यदि ज़रा भी असावधानी हो तो वह बिना हानि किये नहीं रहता। इसके विरुद्ध प्रातः स्मरणों में अमृत ही अमृत भरा हुआ रहता है जिससे हानि की कोई सम्भावना ही नहीं होती।

दुर्भाग्य की बात है कि यह प्रथा वर्तमान् काल में बहुत स्थानों पर लोप होती जा रही है जो किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं। आशा है कि हमारे धुरंधर नेताओं का ध्यान इस अभाव

की ओर आकर्षित होगा और वे हमारी शिक्षण प्रणाली में ही कुछ सुन्दर आयोजन शीघ्र ही कर पाएँगे।

प्रातः स्मरण का उद्देश्य जनता में सद्भावनाओं को जगा देने, भक्ति-प्रेम को उत्पन्न करने और उत्साह तथा पौरुष को उत्तेजना देने का है, और यही होना भी चाहिये। परन्तु देखा गया है कि इसके लिए हमारी प्रातः स्मरण की पोथियों की रचना जैसी होनी चाहिए थी वैसी हो नहीं पाई है। इनमें भक्ति-प्रेम की चर्चा है, पर वह निर्बलता तथा दैन्य दुःखों से भरी पड़ी है। यत्र तत्र निर्विर्णता अकर्मण्या तथा प्रेरणाओं की उपेक्षा ही छाई दिखाई देती है! इसका कारण यही है कि हमारा अतीत अनेक शताब्दियों का इतिहास, परकीयों के घोर आक्रमण और अत्याचारों से भरा पड़ा हुआ है। अतः हमारे कवियों तथा साधु पुरुषों के सामने दुःख, दारिद्र्य, दैन्य और हत्याकांड के दृश्य ही घूर्णायमान रहे, इसलिए उनके लेखों में निराशा और निरुत्साह को ही (मानो एक गहरे Inferiority complex को ही) बड़ा भारी स्थान मिलता है। किसी भी दृष्टि से यह हमारी वैदिक संस्कृति का आदर्श नहीं हो सकता। इस मध्यकालीन दुरावस्था के कारण, हम जीवन की महती प्रेरणाओं से दूर हो गये हैं। जीवन पर नियंत्रण, आत्मबल का सम्पादन, मृत्यु पर विजय और लोक कल्याण के आदर्श की प्रतिष्ठा, यही हमारी संस्कृति है। पहले अपने को निर्मल करो, और फिर धर्म साधनाओं से अभ्युदय तथा निःश्रेयस अर्थात् विश्वशांति की प्रतिष्ठा करने वाले अध्यात्म ज्ञान का प्रकाशन

करो, यही हमारी संस्कृति की अमर वाणी है

न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले।
मोक्षो हि चेतो विमलं सम्यग्ज्ञानविबोधितम् ॥

(योगवासिष्ठ ५-७३-३५)

'अत्र ब्रह्म समश्नुते'

(बृहदारण्यक उप० ३-८)

यह हमारी अध्यात्म विद्या का सिद्धान्त है। मुक्ति मरने के अनन्तर मिलने वाली वस्तु नहीं है। वह तो जगत् में सुख और शांति पैदा करा देने वाली ज्ञानी पुरुष की जीती जागती, यहाँ वाली अवस्था है।

अब पराधीनता की अन्धकारमयी रजनी का अवसान हो गया है और स्वाधीनता की नवप्रभात में प्राची दिशा उद्भासित हो उठी है। हमारी प्रिय संस्कृति का आदर्श विश्वकल्याण है और यही हमारे प्रवीण नेताओं की भी आन्तरिक प्रेरणा है। इसके लिए हमको चाहिए कि हम भी तपस्या द्वारा कटिबद्ध हो जाएँ। हमारे नवयुवकों को नवचैतन्य से प्रेरित करने के लिए उत्तेजनापूर्ण सद्भावनाएँ एवं पौरुष (पराक्रम) उत्पन्न कराने वाले उपदेशों की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिए सर्वप्रथम (१) हमारे नेतागण के चरित्र ही उदार विचार तथा आचारों से भरे हुए हों, दूसरे (२) हमारी शिक्षण प्रणाली के सम्बन्ध में सुयोग्य योजनाएँ बनाई जाएँ और तीसरे (३) हमारा गृह शिक्षण भी भली भांति सुधरा सँवरा हो। स्पष्ट है कि आदर्श जीवन बिना

भरसक प्रयत्नों के नहीं बन सकता। गृह शिक्षण में प्रातः स्मरण का अन्तर्भाव होता है, और उसकी कितनी महती उपयोगिता है, पहले ही बताया जा चुका है। इसी दृष्टि से उद्बोधक विचारों तथा देश सेवा के लिए शक्ति प्रदान में सहायक विचारों को इस छोटी पुस्तक में एकत्रित करने का प्रयत्न किया गया है।

संसार के सब देशों में भारतवर्ष एक अत्यन्त प्राचीन देश है, और धर्म, तत्वज्ञान, समाजशास्त्र और राजनैतिक क्षेत्रों में प्राचीन काल में भारत वासियों ने जितनी प्रगति की है उतनी दूसरे देश वासियों ने नहीं की। यदि कहा जाए कि संसार के सभी धर्म-प्रवर्त्तकों ने अपने मौलिक विचारों की स्फूर्ति, इसी देश के महर्षियों से ली है, तो अत्युक्ति न होगी। परन्तु यह भी सत्य है कि प्राचीन तथा सम्पन्न होने के कारण इस देश में इन सब क्षेत्रों में जितने झगड़े, पचड़े, आन्दोलन, उलझनें और मतमतान्तर उत्पन्न हुए हैं, उतने दूसरे किसी देश में नहीं हुए। फलस्वरूप, आज भी हमारे देश में उपर्युक्त क्षेत्रों में कुकल्पनाएँ और कुप्रथाएँ दिखाई देती हैं।

हर्ष का स्थान है कि इस दृष्टि से हमारा संविधान और हमारे प्रवीण धुरंधर नेतागण इन भ्रान्त मतों को और रीतियों को हटाने और मिटाने में प्रयत्नशील हैं और उनको अब तक पर्याप्त मात्रा में यश भी मिला है, जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है कि उनके सभी प्रयत्न, शीघ्र ही सफलता पाएँगे। इस दृष्टि से लेखक ने भी एक वैचारिक प्रयत्न अपने 'स्वराज्य-

प्रबोधमाला' नामक स्तोत्र में किया है, और मत परिवर्तन की दृष्टि से आशा है कि उसका भी कुछ उपयोग होगा।

किसी भी समाज की प्रगति, उसके धुरंधर नेताओं तथा अनेक सामाजिक पुरुषों के चरित्र और व्यवहार पर निर्भर करती है। समाज में जितनी अधिक मात्रा में ऊँचे-ऊँचे नैतिक प्रकाशमय प्रभावोत्पादक और कर्त्तव्यपरायण विचारों का प्रचार और तदनुरूप आचरण हो, उतनी ही उस समाज की प्रतिष्ठा संसार में अधिक होनी अवश्यंभावी है। अतः सर्वप्रथम सद्विचारों का प्रणयन, मनन और चिन्तन होना आवश्यक है और साथ ही, उनको आचरण में लाना तो अत्यावश्यक है। इस दृष्टि से सुप्रभात के शांत और पवित्र वेला में सर्व प्रथम परमात्मा का चिन्तन तथा उदात्त और स्फूर्तिदायक विचारों का मनन निदिध्यासन और उनको प्रयोग में लाने का कार्य, प्रातः स्मरण के विधान से बहुत सुकर होने में कोई सन्देह नहीं है।

इस छोटी-सी पुस्तक में जो अनेक मौलिक मार्गदर्शक तथा मार्मिक विचारों का संग्रह किया गया है, उसमें प्रत्येक विचार एक स्वतंत्र उपन्यास की योग्यता रखता है। उदाहरणार्थ, महर्षि वसिष्ठ जी के निम्नांकित दो श्लोक लीजिये :—

शुभाशुभ्यामार्गाभ्यां वहन्ती वासनासरित्।
पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि॥

....

सर्वमेवेह हि सदा संसारे रघुनन्दन।
सम्यक्प्रयुक्तात्सर्वेण पौरुषात्समवाप्यते॥

क्या इनमें अनेक कथानकों तथा पराक्रमी पुरुषों के चारित्रों का रहस्य नहीं दिखाई देता ? किसी देश की सुशिक्षा प्रणाली में ऐसे उदार और महनीय चारित्रों का पठन तो अत्यावश्यक है ही, परन्तु प्रातः स्मरण जैसी तुरन्त तात्पर्य और निष्कर्ष बताने वाली पुस्तकों का पठन पाठन भी कम महत्व वाला नहीं समझा जा सकता।

इस पुस्तक में अनेक प्राचीन ग्रन्थों से उद्धरण लिये गये हैं जिसके लिये लेखक उनका अत्यन्त ऋणी है। केवल एक ही स्तोत्र-उपर्युक्त ''स्वराज्य-प्रबोध माला' उसकी बनाई हुई हैं, जिसके भी सारे उदात्त विचार महात्माओं के हैं, रचना मात्र उसकी है। अस्तु

आनन्दाय सतांभूयात्
एषाऽल्प रचना मम

म. दा. गाडगील



प्रातः स्मरण :

ब्राह्मे मुहूर्ते सम्बुध्य चिन्तयेदात्मनो हितम्
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ।

वेदतत्त्वार्थः परमात्मा ।
(आचारमयूख)

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनूर्यजूंषि ।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं
ब्रह्माहरात्मकमलाक्षमचिन्त्यरूपम् ॥ १ ॥
प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभि-
र्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नुतमर्चितं च ।
वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूतं
त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥ २ ॥
प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं
पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च ।
तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्तिं
गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिदं भानोः प्रातः प्रातः पठेद्द्विजः ।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः परमं सुखमाप्नुयात् ॥ ४ ॥

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिमवेति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ॥ १ ॥

प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यम्
वाचो विभान्ति सकलं यदनुग्रहेण ।
यन्नेति नेति निगमानिगमैरजग्मु-
स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ॥ २ ॥
प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
सन्मात्रपूर्णमखिलं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषविशेषमूर्तौ
रज्ज्वां भुजंगम इव प्रविभासितं वै ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम् ।
प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम् ॥ ४ ॥

प्रातः स्मरामि परिपूर्णमनन्तमेकं
सच्चित्सुखाकृतिनिजानुभवैकवेद्यम् ।
आरब्धविश्वजननस्थितिभङ्गलीलं
ब्रह्माद्वयं तदखिलश्रुतिमौलिगम्यम् ॥ १ ॥
प्रातर्भजामि तमहं निजमाययेदं
सृष्ट्वा जगत्तदनुविश्य विचित्रशक्तिः ।
जीवात्मनेन्द्रियमनोगुणबुद्धिसाक्षी
यो लीलया विहरते सततं महेशः ॥ २ ॥
प्रातर्नमामि दहरात्मतया स्फुरन्तं
प्रत्यक्तया पृथु तटस्थतया स्फुरन्तम् ।
अन्तर्नियामकतया स्थितमङ्गभाजा-
माधारकारणविवर्ततया स्फुरन्तम् ॥ ३ ॥
प्रातः श्रये तमिह जाग्रति विश्वसंज्ञं
स्वप्नोदये तदुरीकृततैजसाख्यम् ।
प्राज्ञं सुषुप्तिसमये च शिवं तुरीये
तत्त्वेन चिन्तयतमाद्यमनन्तवस्तु ॥ ४ ॥

प्रातर्नमामि गुरुशास्त्रविचारलब्ध-
तत्त्वंपदार्थसहजैक्यतया दृशोच्चैः ।
मोहान्धकारमवधूततया स्फुरन्तं
स्वात्मानमेव सुदृढं निजबोधरूपम् ॥ ५ ॥

प्रातः स्मरामि परिपूर्णमनन्तमेक-
मेकं परं परमसूक्ष्ममुपाधिशून्यम् ।
सत्यस्वरूपममलं च विशुद्धतत्त्वं
ब्रह्मैव सत्यमिति निर्गुणमद्वितीयम् ॥ ६ ॥

प्रातर्भजामि शिवतत्त्वमजं पुराण--
माद्यन्तशून्यमभयं स्वपरप्रकाशम् ।
सर्वात्मकं सदसतोः परमार्थतत्त्वम्
ब्रह्मैव सत्यमिति निर्गुणमद्वितीयम् ॥ ७ ॥

प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहं
सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम् ।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोभिरामं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ १ ॥

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ २ ॥

प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं
वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम् ।
नामादिभेदरहितं षड्भावशून्यं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ ३ ॥

प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य
श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति
ते दुःखजातं बहुजन्मसंचितं
हित्वा पदं यान्ति तदेव शंभोः ॥ ४ ॥

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम्
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥ १ ॥
प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना
पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः ।
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य
पारायणप्रवणविप्रपरायणस्य ॥ २ ॥
प्रातर्भजामि भजतामभयंकरं तं
प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै ।
यो ग्राहवक्त्रपतिताङ्घ्रिगजेन्द्रघोर-
शोकप्रणाशमकरोद्धृतशंखचक्रः ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं प्रातः प्रातः पठेद्द्विजः ।
लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥ ४ ॥

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं
मन्दस्मितं मधुरभाषि विशालभालम् ।
कर्णावलम्बिचलकुण्डलशोभिगण्डं
कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम् ॥ १ ॥
प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्दं
रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः ।
यद्राजसंसदि विभज्य महेशचापं
सीताकरग्रहणमङ्गलमाप सद्यः ॥ २ ॥

प्रातर्नमामि रघुनाथपदारविन्दं
पद्मांकुशादिशुभरेखिशुभावहं मे ।
योगीन्द्रमानसमधुव्रतसेव्यमानं
शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः ॥ ३ ॥
प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम
वाग्दोषहारि कलुषं सकलं निहन्ति ।
यत्पार्वती स्वपतिना सह भोक्तुकामा
प्रीत्या सहस्रहरिनामसमं जजाप ॥ ४ ॥
प्रातः श्रये श्रुतिनुतां रघुनाथमूर्तिं
नीलाम्बुदोत्पलसितेतररत्ननीलाम् ।
आमुक्तमौक्तिकविशेषविभूषणाढ्यां
ध्येयां समस्तमुनिभिर्जनिमृत्युहन्त्रीम् ॥ ५ ॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रयतः पठेत
नित्यं प्रभातसमये पुरुषः प्रबुद्धः ।
श्रीरामकिंकरजनेषु स एव मुख्यो
भूत्वा प्रयाति हरिलोकमनन्यलभ्यम् ॥ ६ ॥

प्रातः स्मरामिशरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां
सद्रत्नवन्मकरकुण्डलहारभूषाम् ।
दिव्यायुधोर्जितसुनीलसहस्रहस्तां
रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम् ॥ १ ॥
प्रातर्नमामि महिषासुरचण्डमुण्ड–
शुम्भासुरप्रमुखदैत्यविनाशदक्षाम् ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमणिमोहनशीललीलां
चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम् ॥ २ ॥
प्रातर्भजामि भजतामखिलार्तिहन्त्रीं
धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम् ।

संसारबन्धनविमोचनहेतुभूतां
मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णोः ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिदं देव्याश्चण्डिकायाः पठन्नरः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ ४ ॥

श्रीगुरु नमन :

नारायणं पद्मभुवं वसिष्ठं
शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च ।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं
गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ॥ १ ॥
श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्म-
पादं च हस्तामलकं च शिष्यम् ।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यान्-
अस्मद्गुरून् संततमानतोऽस्मि ॥ २ ॥

ईश स्मरण :

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ १ ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः ॥ २ ॥
न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥ ३ ॥

मानसिक स्नान :

खस्थितं पुण्डरीकाक्षं मंत्रमूर्तिं विभुं स्मरन् ।
अनन्तादित्यसंकाशं वासुदेवं चतुर्भुजम् ॥ १ ॥

शंखचक्र गदापद्मपीताम्बरधरं हरिम् ।
श्यामलं शान्ति निलयं प्रसन्नमुखपङ्कजम् ॥ २ ॥

दिव्यचन्दनलिप्तांगं चारुहासं शुभेक्षणम् ।
केयूरहारिणं दिव्यं सुवर्णमुखपंकजम् ॥ ३ ॥

वनमालापरिवृतं नारदादिभिरर्चितम् ।
अनेकरत्नसंछन्नस्फुरन्मरकुंडलम् ॥ ४ ॥

ध्वजवज्रांकुशाब्जादिपादपद्मविराजितम् ।
तत्पादोदकजां गंगां निपतंतीं स्वमूर्धनि ॥ ५ ॥

चिन्तयेद्ब्रह्मरंध्रेण प्रविशंतीं स्विकां तनूम् ।
तया संक्षालयेत्सर्वमंतर्देहगतं मलम् ॥ ६ ॥

तत्क्षणाद्विरजोमर्त्यो भवत्येव न संशयः ।
इदं मानसिकं स्नानं प्रोक्तं हरिहरादिभिः ॥ ७ ॥

नमः शिवायै गंगायै शिवदायै नमोनमः ।
नमस्त्रिपथगामिन्यै विश्वमूर्त्यै नमोनमः ॥ ८ ॥

इडा भागीरथी गंगा पिंगला यमुना नदी ।
तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्नाख्या सरस्वती ॥

ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे ।
यःस्नाति मानसे तीर्थे स याति परमांगतिम् ॥ ९ ॥

अतिनीलघनश्यामं नलिनायतलोचनम् ।
स्मरामि पुंडरीकाक्षं येन स्नातो भवाम्यहम् ॥१०॥

देहो देवालयः प्रोक्तः जीवो$ देवःसदाशिवः ।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन पूजयेत् ॥११॥

$ यहाँ 'जीव' शब्द का अर्थ पारमार्थिक जीव अर्थात् प्रत्यगात्मा, हृदयस्थ नारायण है, संसारी जीव नहीं ।

महर्षि व्यास की भारत सावित्री :

महर्षिर्भगवान्व्यासः कृत्वेमां संहितां पुरा।
श्लोकैश्चतुर्भिर्धर्मात्मा पुत्रमध्यापयच्छुकम्॥
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे॥ १॥

हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥ २॥

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥ ३॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥ ४॥

इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति॥ ५॥

वैदिक राष्ट्र-गीत

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।
आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।
दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा
जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्।
योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

(यजु. सं. २२।२२)

(भाषान्तर कर्ता 'राम', 'कल्याण' मासिक के 'हिन्दू संस्कृति' अंक से)

भारतवर्ष हमारा प्यारा, अखिल विश्व से न्यारा;
सब साधन से रहे समुन्नत, भगवन्! देश हमारा।
हों ब्राह्मण विद्वान् राष्ट्र में ब्रह्मतेज-व्रत-धारी,
महारथी हों शूर धनुर्धर क्षत्रिय लक्ष्य-प्रहारी।
गौएँ भी अति मधुर दुग्ध की रहें बहातीं धारा॥
सब··· ॥ १ ॥

भारत में बलवान वृषभ हों, बोझ उठायें भारी;
अश्व आशुगामी हों, दुर्गम पथ में विचरणकारी।
जिनकी गति अवलोक लजाकर हो समीर भी हारा॥
सब··· ॥ २ ॥

महिलाएँ हों सती सुन्दरी सद्गुणवती सयानी,
रथारूढ़ भारत-वीरों की करें विजय-अगवानी।
जिनकी गुण-गाथा से गुंजित दिग्-दिगन्त हो सारा॥
सब··· ॥ ३ ॥

यज्ञ-निरत भारत के सुत हों, शूर सुकृत-अवतारी,
युवक यहाँ के सभ्य सुशिक्षित सौम्य सरल सुविचारी।
जो होंगे इस धन्य राष्ट्र का भावी सुदृढ़ सहारा॥
सब··· ॥ ४ ॥

समय-समय पर आवश्यकतावश रस घन बरसाये,
अन्नौषध में लगें प्रचुर फल और स्वयं पक जायें।
योग हमारा, क्षेम हमारा स्वतः सिद्ध हो सारा॥
सब··· ॥ ५ ॥

—'राम'

नासदीय सूक्त

(ऋग्वेद १०। १२९। १-७)

(भाषान्तर कर्ता—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम', 'कल्याण' मासिक के 'हिन्दू संस्कृति' अंक से)

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः
किमासीद् गहनं गभीरम् ॥ १ ॥

'असत्' नहीं उस प्रलयकाल में, 'सत्' भी नहीं रहा कारण;
हुआ भूमि-पाताल प्रभृति भुवनों की सत्ता का वारण।
अन्तरिक्ष भी नहीं, नहीं वे स्वर्ग आदि रह गये प्रदेश;
क्या आवरण, कहाँ, किसके हित, गहन गभीर नीर था शेष ॥१॥

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥ २ ॥

मृत्यु नहीं थी, नहीं अमरता, रात-दिवस का ज्ञान नहीं;
था चेतन, बस, एक ब्रह्म ही, हैं जिसके मन-प्रान नहीं।
था माया के साथ विराजित ब्रह्ममात्र ही सत्तावान्
विद्यमान थी वस्तु यहाँ पर उससे भिन्न न कोई आन ॥२॥

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे-
ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्
तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥ ३ ॥

आवृत हो अज्ञान-तिमिर से पहले यह सब था तमरूप,
दुग्धराशि में मिलित सलिल-सा अखिल विश्व अज्ञात अरूप।
तुच्छ अविद्या से छादित जो तम से एकीभूत हुआ,
वही विश्व विभुके तप की महिमा से फिर उद्भूत हुआ ॥३॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥ ४ ॥

हुआ सृष्टि-रचना के पहले ईश्वर के मनमें संकल्प,
क्योंकि पुरातन कर्मराशि थी बीजारूप में उदित अनल्प।
ज्ञानी पुरुषों ने मेधा से निज उर में जब किया विचार,
'सत्' के साधनभूत कर्म का हुआ 'असत्' में साक्षात्कार ॥४॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा-
मधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन्
स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ॥ ५ ॥

तना सृष्टि का सूर्यरश्मि-सा सहसा ही सब ओर वितान,
पहले मध्यलोक में, ऊपर या नीचे—कुछ हुआ न भान।
कर्मों के कर्ता-भोक्ता थे अगणित जीव हुए उत्पन्न,
भोग्य-स्थान महान् भूत भी, भोक्ता उच्च, अधम है अन्न ॥५॥

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा
को वेद यत आबभूव ॥ ६ ॥

किस निमित्त, किस उपादान से हुई प्रकट नानाविध सृष्टि—
कौन जानता, कौन बताये, किसकी वहाँ पहुँचती दृष्टि ।
पैदा हुए देवगण भी तो भूत-सर्ग के ही पश्चात्;
फिर किससे सब सृष्टि हुई है, यह रहस्य किसको है ज्ञात ॥६॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो
अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ ७ ॥

जिस विभु से इस विविध सृष्टि का हुआ प्रकट अतिशय विस्तार,
वही इसे धारण करता है, रखता या कि बिना आधार ।
जो इस जग का परम अधीश्वर रहता परम व्योममय देश,
वही जानता या न जानता; नहीं अन्य का यहाँ प्रवेश ॥७॥

शुभ संकल्प के लिये प्रार्थना

(ऋग्वेद खिलकाण्ड ४-१२)

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१॥

अमृत भरे जिन ज्योति रूप ने त्रिलोक सारा व्याप्त किया
भूतभविष्यंद्वर्तमान भी निजमहिमासे घेर लिया
सतहवन के चलते जिनकी आज्ञा से सब यज्ञ विधान
उन विभुके शुभ संकल्पों से हो मन मेरा नित बलवान ॥१॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वंति विदथेषु धीराः
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥

यज्ञ याग में कर्मवीरगण निपुण मनस्वी धर्मनिधि
जनगण की हितवाञ्छा से करते हैं सब कर्मविधि
फलदाता हैं सब कर्मों के पूजनीय हैं जो भगवान्
उन विभुके शुभ संकल्पों से हो मन मेरा नित बलवान् ॥२॥

✢ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरंतः अमृतं प्रजासु
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥

जिसमें धैर्य-शक्ति चिन्तन भी तथा ज्ञान रहता भरपूर
प्राणिमात्र में अमृतमय है या प्रकाश का बहता पूर
जिसके बिना नहीं चलता है निश्चय कोई कार्य विधान्
श्री विभुके शुभ संकल्पों से वह मन मेरा हो बलवान् ॥३॥

यज्जाग्रतो दूरमुदेति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥४॥

प्रभो जागते हुए सदा जो दूर-दूर तक जाता है
सोते में भी दिव्य शक्तिमय कोसों दौड़ लगाता है
दूर दूर वह जाने वाला तेजों का भी ज्योति-निधान
श्री प्रभुके शुभ संकल्पों से वह मन मेरा हो बलवान् ॥४॥



मानस मंदिर में आओ

मानस मंदिर में आओ।
रोम रोम में अस्थिर तन के,
अंतस्तल में औ मानस के,
निज आभा पल पल झलकाओ।

✢ ऋचाएँ ३ और ४ तथा 'मानस मंदिर में आओ' यह कवन श्रीमती कृष्णा कुमारी की 'प्रार्थना' पुस्तक से लिए गए हैं।

नाविक हो जीवन नौका के,
स्वामी हो तुम मेरे मन के,
वाणी में अमृत बरसाओ।

मृदु भावों में शक्ति जगाओ,
चित्रण में नवजीवन लाओ,
जग को मंगलमय सरसाओ।

श्रीरामदास कृत भूपाली

उठोनियां प्रातःकाळीं । जपा रामनामावळी ।
स्वयें ध्यातो चंद्रमौळी[1] । शैलबाळीसमवेत[2] ॥ध्रु०॥

राम योग्यांचें मंडण । राम भक्तांचें भूषण ।
राम धर्माचें रक्षण । संरक्षण दासाचें ॥१॥
रामें ताटका मारिली । रामें शिळा उद्धरिली ।
रामें जानकी पर्णिली । गणिका केली ते मुक्त ॥२॥
रामें पाषाण तारिले । रामें दैत्य संहारिले ।
रामें बंदी सोडविले । मुक्त केले सुरवर ॥३॥
रामें रक्षिलें भक्तांसी । रामें सोडविलें देवांसी ।
राम दासाचे मानसीं । रामदासीं आनंद ॥४॥

श्री तुलसीदास कृत भूपाली

जागिये रघुनाथकुंवर । पंछी बन बोले ॥टेक॥
चंद्रकिरण शीतल भई । चकई[3] पिय मिलन गई ।
त्रिविध मंद चलत पवन । पल्लव द्रुम डोले ॥१॥

---

१ शंकर २ पार्वती के साथ ३ चक्रवाकी

प्रातभानु प्रकट भयो । रजनीको तिमिर गयो ।
भृङ्ग करत गुंजगान । कमलन दल खोले ॥२॥

ब्रह्मादिक धरत ध्यान । सुरनरमुनि करत गान ।
जागन की बेर भई । नयन पलक खोले ॥३॥

तुलसिदास अति अनंद । निरखिके मुखारविंद ।
दीननको देत दान । भूषण अनमोले ॥४॥



श्री शिवराम स्वामी कृत भूपालीपंचक

इस भूपाली में अद्वैत विज्ञान के सिद्धान्तों को हृदयहारी रीति से स्वल्पशब्दों में प्रदर्शित किया गया है । प्रथम पद्य में निर्मल आत्मतत्व, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा विराट हिरण्यगर्भ और महत्तत्त्व इन उपाधियों से अलग बताया गया है । दूसरे पद्य में वह देह, प्राण तथा मन के धर्मों से अलिप्त रहते हुए, सभी पदार्थों में 'अनुस्यूत' है, बताया गया है । तीसरे पद्य में विरक्ति भक्ति तथा ज्ञान के लक्षण कह कर इस 'त्रिवेणी' में अवगाहन करने वाला, वर्णाश्रम बन्धनों के पार किस प्रकार जा सकता है, बताया गया है । चौथे में वृत्तियों को, अलिप्तता से 'साक्षी' अर्थात् देखते रहने वाला पुरुष किस प्रकार 'सहज समाधि' की अवस्था का अनुभव करता है, दिखा कर, पाँचवें पद्य में 'विसर' अर्थात् अज्ञान को त्याग तथा 'आठव' एवं स्मरण को मिटा कर, साधक किस प्रकार जीवन्मुक्त एवं ब्रह्मरूप हो सकता है, दर्शाया गया है ।

रामकृष्ण हरि गोविंदा, राजीवनयना रे । बापा राजारामा रे ॥
अनाथबंधो पतितपावना करुणावंता रे ॥ध्रु०॥

गुरुकरुणोदयकाळीं, शिवगुरुवर गितिं गावा।
स्वहितकारणें आपुला आपण विचार करावा ॥१॥

इंद्रियांसकट स्थूल नव्हें मी, जाणता याचा।
याचिकारणें विराट नोहे, देखणा[1] त्याचा ॥२॥

मनबुद्ध्यादी वृत्तिसि जाणें, अंतःकरणाच्या।
कारण हिरण्यगर्भ तयाचा साक्षी मी साचा ॥३॥

स्वरूपिं[2] जे कां विस्मृती तें, मायेचें रूप जाणा।
तेंचि येथें कारण मीच, जाणें आपणा ॥४॥

तनुत्रयाचा साक्षी तो मी, महाकारण।
तेथिल चौथे महामायेसी, मीच वोळखण ॥५॥

शबलद्वय-उपाधि निरसितां, जीवशीव हारपले।
शुद्ध पूर्णानंदीं रिघतां शिवरामचि झालें ॥६॥

२

मी देह नव्हेसा झालों तेव्हां, 'उपजणें-निमणें।
रोड-मोठा वृद्ध-तरुण' हें कांहींच नेणें ॥१॥

यापरि विचार करितां मनुजा, सुमनें साक्षेपें।
चैतन्य आत्मा मी हें कळतां, विचारही लोपे ॥२॥

मनसह अंतःकरणाचा मी, देखणाचि वेगळा।
वर्णाश्रमसुखदुःखें येउनि, बाधिति कवणाला ? ॥३॥

क्षुधातृषादि प्राणधर्म हे, मजला दिसताती।
मज मी फिरोनि पाहतां मग हे, कवणा बाधीती ॥४॥

---

१ उस विराट का मैं द्रष्टा हूँ २ स्वरूप का विस्मरण ही माया का कार्य है।

हें जड ऐसें जाणुनि निराळा, होउनि मग पाहतां।
'व्यतिरेकें' ही चिद्चिद्ग्रंथी, सूटे तत्त्वतां ॥५॥

सकळ सच्चिदानंदू हा हो, 'अन्वय'—बोधु।
तो जाणावा शिवरामाचा परिपूर्णानंदु ॥६॥

३

विषय इंद्रियें जड ओळखणें तेची 'विरक्ती'।
चैतन्याकडे वृत्ति फिरविणें, या नांवें 'भक्ती' ॥१॥

मी चिद्घन वस्तुची प्रीतीती, शुद्ध तें 'ज्ञान'।
यापरी त्रिवेणीचें नित्य, करावें स्नान ॥२॥

वर्णाश्रमसह युक्ताचार. इंद्रियां घडे।
विरक्ति-भक्ति-ज्ञान हातां, आपें आप चढे ॥३॥

विचार मुळिंचा हरपे हर्षामर्ष अग कैंचे।
शिवराम भजे पाय संतत, पूर्णानंदाचे ॥४॥

४

वृत्ती जिकडे धांवे तिकडे, न जावें तीपाठी।
साक्षि तियेचा होउनि पाहतां स्वरुपिं होय भेटी ॥१॥

वृत्तिकडे पाहतां वृत्ती, आपणांतचि विरे।
आपण चैतन्य मात्र केवळ, परिपूर्ण उरे ॥२॥

ऐके देखे स्पर्शे हुंगे, जो जो रस चाखे।
बोले चाले वेव्हारीतां, आप आपणां देखे ॥३॥

सहजसमाधी सहजचि भोगी, पूर्णानंदू रे।
शिवराम निरावरण होउनी आनंदे वावरे ॥४॥

५

अरुणोदयकाळीं म्हणतां, पदें पांच हीं ।
अर्थ विवरुनी पाहतां होई, देही विदेही ॥१॥

सद्गुरु-आज्ञावचन पाळणें, 'परमार्थ' या नांवें ।
वेव्हारितां आपण आपणा, विसरूं न द्यावें ॥२॥

विसरा विसरुनि आठवा आसुनि आत्मा स्वयें होणें ।
होणें न होणें वृत्तिविणें त्या, अंगी अनुभविणें ॥३॥

जगीं आपण भरला आपणा माजीं जग पाहे ।
तो जाणावा शिवरामाचा पूर्णानंदू आहे ॥४॥



बृहद्योगवासिष्ठ के कुछ उद्धरण

(अ) मन, चित्त, कलना, तृष्णा, बुद्धि, तथा जीव, के विषय में

१ क्षणमायाति पातालं क्षणं याति नभस्तलम्
क्षणं भ्रमति दिक्कुञ्जे तृष्णा हृत्पद्मषट्पदी ¶।१-१७-३१

२ क्षणमालोकविमला सांधकारलवा क्षणम्
व्योमवीथ्युपमातृष्णा नीहारगहना क्षणम् ।१-१७-४०

३ अहो बत महच्चित्रं तृष्णामपि महाधियः
दुरुच्छेदामपि कृंतंति विवेकेनामलासिना ।३-१७-४७

¶ ये आंकड़े बृहद्योगवासिष्ठ के प्रकरण, अध्याय तथा श्लोकों को बताते हैं ।

४ क्षणमानंदितामेति क्षणमेति विषादिताम्
क्षणं सौम्यत्वमायाति सर्वस्मिन्नटवन्मनः ।१-२८-३८

५ चित्स्वभावपरामृष्टा स्पन्दशक्तिरसन्मयी
कल्पना चिन्मसित्युक्त्या कथ्यते शास्त्रदृष्टिभिः ।५-१३-५१

६ यश्चित्तफणिफूत्कारः सैवेयं कलनोच्यते
चिदेवाहमिति ज्ञात्वा सा चित्तामेव गच्छति ।५-१३-५२

७ कलना सर्वं जन्तूनां विज्ञानेन शमेन च
प्रबुद्धा ब्रह्मतामेति भ्रमरीतरशा जगत् ।५-१३-५९

८ अयं सोऽहमिदं तन्म इति या कलनाविला
प्राणात्मतरवयो स्तस्याः संज्ञा जीवेति कथ्यते ।५-१३-७३

९ धीश्चित्तं जीव इत्येताः संकल्पस्यासतो मताः
संज्ञाः संकल्पितास्तज्ज्ञैर्न राम परमार्थनः ।५-१३-७४

१० मनो नो न मतिर्नापि धीरेषा न शरीरकम्
अस्तीह परमार्थेन स्वात्मैवेहास्ति सर्वदा ।५-१३-७५

११ चित्तैषा चितो मिथ्या कल्पिता बालयक्षवत्
अखण्डमण्डलाकारस्पन्दरूपा चिदेव यत् ।५-१३-९२

१२ जडत्वान्निस्वरूपत्वात् सर्वदैव मृतं मनः
मृतेन मार्यते लोकश्चित्रेयं मौर्ख्यचक्रिका ।५-१३-१००

१३ यस्य नात्मा न देहोऽस्ति नाधारो नापि चाकृतिः
तेनेदं भक्ष्यते सर्वं चित्रेयं मौर्ख्यवागुरा ।५-१३-१०१

१४ सर्वसामग्र्यहीनेन हन्यते मनसापि यः
नीलोत्पलदलाघातैर्मन्ये दलितमस्तकम् ।५-१३-१०२

१५ अहो नु खलु चित्रेयं माया मयविधायिनी
चेतसाप्यतिलोलेन लोकोऽयमभिभूयते ।५-१३-१०६

१६ मूर्ख लोकमयी सृष्टिः मन एवासदुत्थितम्
यः शक्तो न वशीकर्तुं नासौ रामोपदिश्यते ।५-१३-११३

१७ अहो मोहस्य माहात्म्यम् यदयं सर्वदुःखहा
चिंतामणिर्विचाराख्यो हृत्स्थोऽपि त्यज्यते जनैः ।७-१-१२

(आ) ज्ञान तथा ज्ञानी के विषय में

१ सम्यक्पश्यति यस्तज्ज्ञः ज्ञातज्ञेयः स पण्डितः
न स्वदन्ते बलादेव तस्मै भोगा महात्मने ।२-२-७

२ हृद्याकाशे विवेकार्के शमालोकिनि निर्मले
अनर्थसार्थकर्तारो नोद्यंति किल केतवः ।२-१८-२१

३ संसाराम्बुनिधावस्मिन् वासनाम्बुपरिप्लुते
ये प्रज्ञानावमारूढास्ते तीर्णा बुडिताः परे ।४-४६-२२

४ राज्यं कुर्वन्विदेहानां जनको जनजीवितम्
नैव हर्षविषादाभ्यां सोऽवशः परितप्यते ।५-१२-१०

५ भविष्यं नानुसंधत्ते नातीतं चिंतयत्यसौ
वर्तमाननिमेषं तु हसन्नेवानुवर्तते ।५-१२-१४

६ सुन्दर्या निजया बुद्ध्या प्रज्ञयेव वयस्यया
पदमासाद्यते राम न नाम क्रिययान्यया ।५-१२-१८

७ यस्योज्ज्वलति तीक्ष्णाग्रा पूर्वापरविचारिणी
प्रज्ञा दीपशिखा जातु जाड्यांध्यं तं न बाधते ।५-१२-१९

८ प्रज्ञावानसहायोऽपि विशास्त्रोऽप्यरिमर्दन
उत्तरत्येव संसारसागराद्राम पेलवात् ।५-१२-२२

९ चिंतामणिरियं प्रज्ञा हृत्कोशस्था विवेकिनः
फलं कल्पलतेवैषा चिंतितं संप्रयच्छति ।५-१२-२४

१० प्रज्ञयेह जगत्सर्वं सम्यगेवांग दृश्यते
सम्यग्दर्शनमायांति नापदो न च संपदः ।५-१२-३८

११ हृद्गुहावासि चिन्मात्रं मुख्यं सानातनं वपुः
शंखचक्रगदाहस्तो गौण आकार आत्मनः ।५-४३-२७

१२ ज्ञानवानेव सुखवान्ज्ञानवानेव जीवति
ज्ञानवानेव बलवांस्तस्माज्ज्ञानमयो भव ।५-९२-४९

१३ ज्ञानाद्विषयवैरस्यं स समाधिर्हि नेतरः ।७-४६-१५

(इ) पौरुष, दैव तथा प्रज्ञा के सम्बन्ध में

१ सर्वमेवेह हि सदा संसारे रघुनन्दन
सम्यक्प्रयुक्तात्सर्वेण पौरुषात्समवाप्यते ।२-४-८

२ यत्नवद्भिर्दृढाभ्यासैः प्रज्ञोत्साहसमन्वितैः
मेरवोऽपि निगीर्यंते कैव प्राक्पौरुषे कथा ।२-४-१८

३ परं पौरुषमाश्रित्य दन्तैर्दन्तान्विचूर्णयन्
शुभेनाशुभमुद्युक्तं प्राक्तनं पौरुषं जयेत् ।२-५-९

४ प्राक्तनः पुरुषार्थोऽसौ मां नियोजयतीति धीः
बलादधस्पदीकार्या प्रत्यक्षादधिका न सा २-५-१०

५ दैवं प्रेरयति माम् इति दग्धधियां मुखम्
अदृष्टश्रेष्ठदृष्टीनां दृष्ट्वा लक्ष्मीर्निवर्तते।२-५-२०

६ दैन्यदारिद्र्यदुःखार्ता अप्यन्ये पुरुषोत्तमाः
पौरुषेणैव यत्नेन याता देवेन्द्रतुल्यताम्।२-५-२७

७ तस्मात्प्राक्पौरुषाद्दैवं नान्यत्तत्प्रोज्झ्य दूरतः
साधुसंगमसच्छास्त्रैर्जीवमुत्तारयेद् बलात्।२-६-१

८ ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं नरकमेव वा
स सदैव पराधीनः पशुरेव न संशयः।२-६-२७

९ यस्तूदारचमत्कारः सदाचारविहारवान्
स निर्याति जगन्मोहान्मृगेंद्रो पञ्जरादिव।२-६-२८

१० स्वार्थप्रापककार्यैकप्रयत्नपरता बुधैः
प्रोक्ता पौरुषशब्देन सा सिध्यै शास्त्रयंत्रिता।२-६-३२

११ करामलकवत् दृष्टं पौरुषादेव तत्फलम्
मूढः प्रत्यक्षमुत्सृज्य दैवमोहे निमज्जति।२-६-३८

१२ मूढैः प्रकल्पितं दैवं तत्परास्ते क्षयं गताः
प्राज्ञास्तु पौरुषार्थेन पदमुत्तमतां गताः।२-८-१६

१३ ये शूरा ये च विक्रांता ये प्राज्ञा ये च पंडिताः
तैस्तैः किमिव लोकेस्मिन्वद दैवं प्रचक्षते ।२-८-१७

१४ शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासनासरित्
पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि ।२-९-३०

१५ मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तिताः
शमो विचारः संतोषश्चतुर्थः साधुसंगमः ।२-११-५९

१६ एते सेव्याः प्रयत्नेन चत्वारो द्वौ त्रयोऽथवा
द्वारमुद्घाटयंत्येते मोक्षराजगृहे तथा ।२-११-६०

१७ पूर्वापरविचारार्थचारुचातुर्यशालिनी
सविकासा मतिर्यस्य स पुमानिह कथ्यते ।२-११-७२

१८ न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा क्वचित्
पौरुषेण प्रयत्नेन यन्नाप्नोति गुणान्वितः ।४-६२-१९



श्री शंकराचार्य कृत स्तोत्र

मनीषापञ्चकम्

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते
या ब्रह्मादिपिपीलिकान्ततनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी ।
सैवाहं न च दृश्यवस्त्विति दृढप्रज्ञापि यस्यास्ति चे-
च्चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥१॥

ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितं
सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणया शेषं मया कल्पितम् ।
इत्थं यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले
चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥२॥

शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं निश्चित्य वाचा गुरो-
र्नित्यं ब्रह्म निरन्तरं विमृशता निर्व्याजशान्तात्मना ।
भूतं भावि च दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके
प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपुरित्येषा मनीषा मम ॥३॥

या तिर्यङ्नरदेवताभिरहमित्यन्तःस्फुटा गृह्यते
यद्भासा हृदयाक्षदेहविषया भान्ति स्वतोऽचेतनाः ।
तां भास्यैः पिहितार्कमण्डलनिभां स्फूर्तिं सदा भावय-
न्योगी निर्वृतमानसो हि गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥४॥

यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशत इमे शक्रादयो निर्वृता
यच्चित्ते नितरां प्रशान्तकलने लब्ध्वा मुनिर्निर्वृतः ।
यस्मिन्नित्यसुखाम्बुधौ गलितधीर्ब्रह्मैव न ब्रह्मवि-
द्यः कश्चित्स सुरेन्द्रवन्दितपदो नूनं मनीषा मम ॥५॥

निर्वाणषट्कम्

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं
न कर्णं न जिह्वा न च घ्राणनेत्रे ।
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायु-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ १ ॥

न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायु-
र्न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोशः ।
न वाक्पाणिपादौ न चोपस्थपायू
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ २ ॥

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः ।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ३ ॥

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ४ ॥

न मृत्युर्न शंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता च जन्म ।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ५ ॥

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् ।
न चासंगतं नैव मुक्तिर्न बन्ध-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ६ ॥

हस्तामलक स्तोत्रम्

निमित्तं मनश्चक्षुरादिप्रवृत्तौ
निरस्ताखिलोपाधिराकाशकल्पः ।

रविर्लोकचेष्टानिमित्तं यथा यः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ १ ॥

यमग्न्युष्णवन्नित्यबोधस्वरूपं
मनश्चक्षुरादीन्यबोधात्मकानि ।
प्रवर्तन्त आश्रित्य निष्कम्पमेकं
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ २ ॥

मुखाभासको दर्पणे दृश्यमानो
मुखत्वात्पृथक्त्वेन नैवास्ति वस्तु ।
चिदाभासको धीषु जीवोऽपि तद्व-
त्स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ३ ॥

यथा दर्पणाभाव आभासहानौ
मुखं विद्यते कल्पनाहीनमेकम् ।
तथा धीवियोगे निराभासको यः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ४ ॥

मनश्चक्षुरादेर्वियुक्तः स्वयं यो
मनश्चक्षुरादेर्मनश्चक्षुरादिः ।
मनश्चक्षुरादेरगम्यस्वरूपः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ५ ॥

य एको विभाति स्वतः शुद्धचेताः
प्रकाशस्वरूपोऽपि नानेव धीषु ।
शरावोदकस्थो यथा भानुरेकः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ६ ॥

यथानेकचक्षुःप्रकाशो रविर्न
क्रमेण प्रकाशीकरोति प्रकाश्यम्।
अनेका धियो यस्तथैकप्रबोधः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ७ ॥

विवस्वत्प्रभातं यथारूपमक्षं
प्रगृह्णाति नाभातमेवं विवस्वान्।
यदाभात आभासयत्यक्षमेकः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ८ ॥

यथा सूर्य एकोऽप्स्वनेकश्चलासु
स्थिरास्वप्यनन्वग्विभाव्यस्वरूपः।
चलासु प्रभिन्नासु धीष्वेवमेकः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ९ ॥

घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं
यथा निष्प्रभं मन्यते चातिमूढः।
तथा बद्धवद्भाति यो मूढदृष्टेः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ १० ॥

समस्तेषु वस्तुष्वनुस्यूतमेकं
समस्तानि वस्तूनि यं न स्पृशन्ति।
वियद्वत्सदा शुद्धमच्छस्वरूपः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ११ ॥

उपाधौ यथा भेदता सन्मणीनां
तथा भेदता बुद्धिभेदेषु तेऽपि।
यथा चन्द्रिकाणां जले चञ्चलत्वं
तथा चञ्चलत्वं तवापीह विष्णो ॥ १२ ॥

दक्षिणामूर्त्यष्टकम्

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ १ ॥

बीजस्यान्तरिवांकुरो जगदिदं प्राङ्निर्विकल्पं पुन-
र्मायाकल्पितदेशकालकलनावैचित्र्यचित्रीकृतम्।
मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ २ ॥

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थगं भासते
साक्षात्तत्त्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान्।
यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ३ ॥

नानाच्छिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरं
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते।
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत्समस्तं जग-
त्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ४ ॥

देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः
स्त्रीबालान्धजडोपमास्त्वहमिति भ्रान्ता भृशं वादिनः।
मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ५ ॥

राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशो मायासमाच्छादना-
त्सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत्सुषुप्तः पुमान्।
प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ६ ॥

बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थास्वपि
व्यावृत्तास्वनुवर्तमानमहमित्यन्तः स्फुरन्तं सदा।
स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ७ ॥

विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामिसंबन्धतः
शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः।
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो मायापरिभ्रामित-
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ८ ॥

भूरम्भांस्यनलोऽनिलोऽम्बरमहर्नाथो हिमांशुः पुमा-
नित्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम्।
नान्यत्किंचन विद्यते विमृशतां यस्मात्परस्माद्विभो-
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ९ ॥

सर्वात्मत्वमिति स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिंस्तवे
तेनास्य श्रवणात्तदर्थमननाद्ध्यानाच्च संकीर्तनात्।
सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः
सिध्येत्तत्पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम् ॥ १० ॥

ललितापञ्चरत्नम्

प्रातः स्मरामि ललितावदनारविन्दं
बिम्बाधरं पृथुलमौक्तिकशोभि नासम् ।
आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलाढ्यं
मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वलफालदेशम् ॥ १ ॥

प्रातर्भजामि ललिताभुजकल्पवल्लीं
रक्ताङ्गुलीयलसदङ्गुलिपल्लवाढ्याम् ।
माणिक्यहेमवलयाङ्गदशोभमानां
पुण्ड्रेक्षुचापकुसुमेषु सृणीर्दधानाम् ॥ २ ॥

प्रातर्नमामि ललिताचरणारविन्दं
भक्तेष्टदाननिरतं भवसिन्धुपोतम् ।
पद्मासनादिसुरनायकपूजनीयं
पद्माङ्कुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्यम् ॥ ३ ॥

प्रातः स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं
त्रय्यन्तवेद्यविभवां करुणानवद्याम् ।
विश्वस्य सृष्टिविलयस्थितिहेतुभूतां
विद्येश्वरीं निगमवाङ्मनसातिदूराम् ॥ ४ ॥

प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्यनाम
कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति ।
श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति
वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति ॥ ५ ॥

यः श्लोकपञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः
सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना
विद्यां श्रियं विमलसौख्यमनन्तकीर्तिम् ॥ ६ ॥

षट्पदी स्तोत्रम्

अविनयमपनय विष्णो
दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय
तारय संसारसागरतः ॥ १ ॥

दिव्यधुनीमकरन्दे
परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे।
श्रीपतिपदारविन्दे
भवभयखेदच्छिदे वन्दे ॥ २ ॥

सत्यपि भेदापगमे
नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः
क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥ ३

उद्धृतनग नगभिदनुज
दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे।
दृष्टे भवति प्रभवति
न भवति किं भवतिरस्कारः ॥ ४ ॥

मत्स्यादिभिरवतारै-
रवतारवतावता सदा वसुधाम् ।
परमेश्वर परिपाल्यो
भवता भवतापभीतोऽहम् ॥ ५ ॥

दामोदर गुणमन्दिर
सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द ।
भवजलधिमथनमन्दर
परमं दरमपनय त्वं मे ॥ ६ ॥

नारायण करुणामय
शरणं करवाणि तावकौ चरणौ ।
इति षट्पदी मदीये
वदनसरोजे सदा वसतु ॥ ७ ॥

स्वराज्य-प्रबोध माला

स्वस्ति श्रीर्दिशतादशेषजगतां तज्ज्योतिराद्यं महत्
सर्वासूपनिषत्सु यन्निगदितं सच्चित्स्वरूपं शिवम्
यच्चावाङ्मनसावगाह्यममृतं वेदांतवेद्यं परम्
भावैरात्मगतैरुदारमधुरैः स्वीये महिम्नि स्थिरम् ॥ १ ॥

---

१ दिशतात्=आदेश दें, जगत् में स्वास्थ तथा सुख के लिए परमात्मा ही हमें आदेश दें। २ अवाङ्मनसावगाह्य=मनवाणी से जिनका साक्षात् नहीं हो सकता, यहाँ 'वाणी' शब्द से सभी ज्ञानेंद्रियाँ ध्वनित होती हैं। परन्तु परमात्मा का ज्ञान सूक्ष्म बुद्धि को अगम्य है, यह अर्थ नहीं है।

ज्ञानानन्दमयं परात्परतरं दिग्वस्तुकालातिगम्[1]
वन्दे देवमजं विलक्षणगुणं श्रीशं परं पावनम् ।
यस्यैकांतिकशासितेऽपरिमिते ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
भ्राजद्भास्करमण्डलान्यमितशो भ्राम्यंति तत्तद्ग्रहैः ॥२॥

[2]भीषाऽस्मादितिवर्णितं श्रुतिगिराऽतर्क्यं च यस्याद्भुतम्
ऐश्वर्यं सहजं प्रशासनमिति त्वा[3]रण्यके कीर्तितम् ।
अस्मिन्नेव महेंद्रजालसदृशी शक्तिः पराधिष्ठिता
याऽ[4]व्यक्ता मुनिभिः सुदीर्घतपसा स्वान्तेऽपरोक्षीकृता ॥३॥

या सृष्टिस्थितिसंहृ[5]तीर्वितनुते स्वानंदरूपाऽमला
तस्या एव विलास एष भवितुं[?]र्हत्यशेषो महान् । प्रा
विश्वांतःस्थितया कयापि सुशकं शक्त्या न संपादितुम्
एतत्सर्वमृते प्रभोःपरिवृ[6]ढाच्चानुग्रहात्सर्वशः ॥४॥

दिक्का[7]लाद्यवधिर्न यामभिभवेद्या सत्स्वरूपा स्वयम्
चिद्रूपा लहरीव या विलसते त्रैलोक्यविद्योतिनी ।
या बीजप्रकृतिर्विकासकुशला या प्राणिनां पोषिणी
कर्माकर्मविपाकसूक्ष्मफलदा प्रोल्लासिनी शासिनी ॥५॥

---

१ दिग्वस्तुकालातिगम्=जिनका स्वरूप देश काल या किसी वस्तु से मर्यादित नहीं है । २ भीषाऽस्मात् (तैत्तिरीय उपनिषत् २-८) ३ आरण्यक, (बृहदारण्यक उपनिषत् ३-८) ४ अव्यक्ता=यह शक्ति स्वयं कहीं बाहर नहीं दीखती है, सदा गुप्त रहती है, केवल उसका प्रभाव या कार्य ही बाहर दिखाई देता है । ५ संहृति=विनाश या उपसंहार

६ परिवृढ=प्रभावी । ७ जिसे देश कालादि की मर्यादा नहीं है । जीव जगत् तथा परमात्मा,, इनके विषय में यथार्थ परिज्ञान को ही तत्त्वज्ञान कहते हैं । संसार के प्रायः सभी तत्त्वज्ञानों में इनके सम्बंध में चर्चा रहती है ।

कामं तां प्रकृतिं वदंत्वथ सतः सत्तां स्वभावं तथा
मायां वा बलवत्प्रशासनमिदं श्रुत्योदितं विश्वभृत् ।
एतास्ताः प्रतिबोधका हि विविधाः संज्ञाः स्वरुपेऽर्पिताः
ज्ञानानंदपरे सदाऽद्वयशिवेऽद्रव्ये न भेदो मनाक् ॥६॥

विशेषतः जगत् की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, यह बड़ी जटिल समस्या मानी गई है। कोई कहते हैं कि जगत् स्वयं सिद्ध है, उसको किसी ने बनाया ही नहीं। कोई कहते हैं कि जड़ 'अज्ञान' ने जगत् को बनाया है। कोई कहते हैं कि सारा विश्व अनंत परमाणुओं का ही बनाया हुआ है, और कोई कहते हैं कि जगत् हुआ ही नहीं और है ही नहीं !! यह तो सबसे विचित्र बात है !

'अद्वैत विज्ञान' की दृष्टि से इस विराट् विश्व को सच्चिदानन्द स्वरूप, निर्गुण निराकार आत्मतत्त्व ने अपनी अद्भुत अचिन्त्य शक्ति से (मानों Thought power द्वारा) बनाया है। थोड़े से विमर्श से यह बात समझ में आ सकती है कि त्रिलोकों को उत्पन्न करा देने वाली शक्ति, त्रिलोकातीत अर्थात् देश-कालातीत और सबसे अलग ही होनी चाहिये। देश काल अपने को तो नहीं उत्पन्न कर सकते ! यही विधि-गति अज्ञान या जड़ पदार्थों की है। फिर एकमेवाद्वितीय चैतन्य, अपने को ही कैसे उत्पन्न करें ? अर्थात् वह ही 'जड़' पदार्थों को उत्पन्न करता है, यह बात अनिवार्यता से प्राप्त होती है। थोड़े लोगों का कहना है कि 'जड़ ही चैतन्य की शक्ति को लेकर त्रिविध पदार्थों की सृष्टि करता है। ठीक है, परन्तु इस 'जड़' की उत्पत्ति किसने की ? वह स्वयं सिद्ध है कहे तो फिर 'द्वैत' सिद्धान्त स्वीकारना पड़ेगा ! इसलिए अद्वैत सिद्धान्त में माया को परमात्मा का सामर्थ्य, ['इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते' ऋग्वेद ६-४७-१८] माना गया है। शंकराचार्य ने इसको अपने मस्तिष्क में से नहीं निकाला है। माया (अर्थात् मूलमाया) परमात्मा की शक्ति है, कोई नष्ट होने वाली भ्रांत वस्तु नहीं। हाँ, कार्य रूप प्रपंच को भी माया अर्थात् 'तूल माया' कहते हैं, जो परिणामी और नष्ट होने वाली है। छान्दोग्य

**विश्वेशः सृजति स्वकीय महसा[1] विश्वं विरिञ्च्यन्वितम्[2]
संकल्पप्रभवैराचिंत्यरभसैर्विद्युद्विवर्तैः[3] कणैः ।**

उपनिषत् (६-२-१) 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्' के भाष्य में शंकराचार्य लिखते हैं 'सद्व्यतिरेकेण सतः सहकारि कारणं द्वितीयं वस्त्वंतरं प्रतिपिद्धयते अद्वितीय मिति'। इसी को 'ब्रह्मकारणता' या 'चैतन्यकारणता' का सिद्धान्त कहते हैं। परन्तु इसके सम्बन्ध में हमारे पण्डितों को ही मजेकी आशंकाएँ उत्पन्न होती हैं, जिनकी समालोचना करने का यह स्थान नहीं है। तथापि इतना कहना युक्त होगा कि वर्तमान युग के प्रवीण वैज्ञानिक, इसी सिद्धान्त की ओर (अर्थात् The monistic unitary view of the Universe की ओर) आकर्षित हो रहे हैं। देखिये Man in the modern world by Julian Huxley, Chapter X 'Philosophy in a World at war'. यहाँ ग्रंथकार लिखते हैं कि यह विश्व Dualistic (द्वैत रूप) नहीं है Monistic (ऐक्य-रूप) है। यहाँ के अखिल पदार्थ एक ही शक्ति के Wavicles अर्थात् 'विवर्त' हैं। परन्तु इससे आगे जाकर किसी सृष्टिकर्ता परमात्मा को मानने या न मानने के सम्बन्ध में अभी इन लोगों में दुविधा है। जो भी हो, हमारी दृष्टि से इन विद्युन्मय Wavicles, विवर्तों के उत्पादक, बिना परमात्मसंकल्पों के कोई हो नहीं सकता। और संकल्पों के उत्पन्नकर्ता परमात्मा, अपनी निर्गुणता से कदापि भ्रष्ट होते ही नहीं। सगुण निर्गुण में 'द्वैत' नहीं है, वे एक ही हैं।

१. महस=तेज एवं प्रभाविता, स्वकीय महसा, अर्थात् अपनी प्रभाविता से।

२ विरिञ्चि=सृष्टिकर्ता ब्रह्मदेव [यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् श्वे. उ. ६-१८]

३ वर्तमान युग के प्रवीण शास्त्रज्ञ स्वर्गवासी आल्बर्ट आइन्स्टाइन के सिद्धान्तानुसार, यह विराट् विश्व (A vast unified electro-magnetic field) एक अथाह एकतन्त्र विद्युच्चुम्बकीय क्षेत्र है, जिसमें विद्युद्विवर्त विद्युत्कण और प्रचण्ड विद्युत् आकर्षणों तथा विकर्षणों का एक घमासान

दिक्कालाप्रमितप्रकर्षनिभृतैः शम्पासमुज्जृम्भणैः
तज्जन्यैरनिलादिभूतनिकरैर्व्याप्यस्थिते रोदसी ॥७॥

ज्योतीरूपमयैरसीमगणनाकारप्रभाभास्वरैः
स्फारेऽत्यंतदविष्ठदिव्यनभसि भ्राम्यद्भ-मेघै-र्गणैः ।
सर्वाश्चर्यमयैरतीवविविधैर्जीवैश्च जीवाणुभिः
नानाकारविचित्रदेहकरणस्थूलादिकोशैर्वृतैः ॥८॥

स्वातंत्र्ये लवमात्रशक्त्यधिकृतैस्तृष्णादि दोषान्वितैः
धावद्भिः प्रदिशं सुखार्थमनिशं संख्यातिगैर्जंतुभिः ।
अत्यल्पैश्च युतं सुबुद्धिसहितैश्चिन्नाट्यपूर्णं जगत्
संकल्पप्रमितं विलापयति तत् लीलां परां संहरन् ॥९॥

अत्यंत चपलं विचित्रमतुलं यंत्रं 'मनो' नामकम्
जन्तूनां हृदये निवेशितमहो विश्वात्मना लीलया ।
सामर्थ्यं प्रबलं समस्ति निहितं तस्मिंश्चमत्कारि यत्
शक्तिश्चापि तथाऽस्य संयमपरा दत्तास्ति जीवात्मनाम् ॥१०॥

नाट्य चल रहा है। भौतिक वाद की दृष्टि से तो यह बात ठीक है, परन्तु आस्तिकता की दृष्टि से (और उपर्युक्त पण्डित भी स्वयं बड़े आस्तिक थे) इस विराट नाट्य के सूत्रधार परमात्मा हैं, जो अपनी अद्भुत संकल्प शक्ति से विश्व प्रपंच की लीला दिखा रहे हैं। देखिए पृष्ठ ४१ की ७ वीं टिप्पणी।

१ Time and Space Continuum

२ शम्पासमुज्जृम्भण=विद्युत् की हलचल। २ जो ज्वलन्त रूप हैं। ३ भ-मेघैः Nebula, नीहारिका के सदृश तारक समूह। ४ यह स्वातंत्र्य, यूँ देखा जाए तो लवमात्र ही है, परन्तु ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि से इसमें कहीं अधिक कल्याण कारी गुण भरे पड़े हैं, जिनके द्वारा मानव अपनी असीम उन्नति कर पाता है। ५ देखिए पृष्ठ २१ ऋचाएँ ३ और ४

तस्मात्संयमवान्भवेन्निजमनोयंत्रप्रयोगे सदा
स्वच्छान्तःकरणो विवेककुशलः कर्तव्यनिष्ठःपुमान् ।
शास्त्रज्ञानपरः विचार्य सकलं कुर्यादिमं निश्चयम्
प्राप्स्ये स्वीयसदुद्यमैः[1] प्रभुकृपां स्वान्तःसुखं निर्मलम् ॥११॥

अत्याश्चर्यमयी मता क्षितितले सृष्टिः पुनर्मानवी
स्वायत्तैर्बहुसाधनैः परिवृढा स्वोत्कर्षसिध्यै क्षमा।
नैतत्किं प्रबलं समर्पकमहो प्रत्यायकं श्रीप्रभोः
अस्तित्वस्य च शासनस्य सुतरां निश्चायकं ज्ञापकम् ? ॥१२॥

अज्ञानां बहु दुःखदं जगदिदम् सत्सौख्यदं ज्ञानिनाम्
एवं ज्ञानपरो भवेत्सुमतिमान् स्वानन्दनः सर्वदा।
सर्वेषां हितमाचरेत्प्रभुपरः सद्धर्मचारित्र्यवान्
स्वानंदाम्बुनिधौ प्रमार्जितधियां शोकस्य कःसम्भवः ? ॥१३॥

पाश्चात्यैर्जगतः सतत्त्वमधुना विद्युन्मयं निश्चितम्
ज्ञेयं तत्खलु बाह्यमेव जगतो रुपं हि प्रातीतिकम्[3] ।

कार्यो ————————————————————

१ 'न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः' ऋग्वेद (४-३३-११) बिना परिश्रम के परमात्मा की कृपा नहीं होती। २ एक अमेरिकन विद्वान् Dantzig, Tobias अपनी पुस्तक 'Number, the lauguge of science' के पृष्ठ ३३१ पर लिखते हैं Man is the measure of all things, मानव स्वयं, परमात्मा के अस्तित्व का जीता जागता प्रमाण है। परन्तु आश्चर्य की बात है कि बहुत से पण्डित इस पर विश्वास नहीं करते हैं। ३ प्रातीतिकम्=दैनंदिन अनुभव में आने वाला, केवल भ्रम रूप नहीं (Empirical)

प्राचीनैर्मुनिभिः सुनिश्चितमिदं चिन्मात्रविस्तारितम्
नानाकारविकारवर्णरुचिरं श्रीशेन संकल्पितम् ॥१४॥

विश्वेशः सृजति प्रशास्ति सततं ब्रह्माण्डमेतद्ध्रुवम्
तस्मात्स प्रभुरेव पुण्यमथवा पापं करोति स्वयम् ।
किंवाऽन्यैः प्रभुरेव कारयति तत्सर्वं शुभं वाऽशुभम्
इत्थं यो मनुते प्रवक्ति च परान् संभ्रान्तचित्तो हि सः ॥१५॥

चोरेभ्यः किमु देव एव कुमतिं पापात्मिकां घातिनीम्
दत्ते ? तर्हि स एव पापफलभाग्दण्डयः खलो वञ्चकः ।
एतत्सर्वमनर्गलप्रलपितं भ्रान्तात्मनां प्राणिनाम्
ज्ञातव्या खलु तत्त्वनिर्णयधिया या हि स्थितिर्वास्तवी ॥१६॥

त्रैलोक्याधिपतेः स्वरूपममलं दिव्यै रहस्यैर्युतम्
न ज्ञातुं सुशकं विवेकरहितैः संभ्रांतचित्तैर्जनैः ।
किन्त्वेतत्सुशकं विशुद्धधिषणैर्ज्ञातुं प्रवेष्टुं तथा
ज्ञानाभ्यासवशीकृतैः सुहृदयैः सद्भक्तिपूतात्मभिः ॥१७॥

इत्येतत्प्रतिपादितं भगवता गीतासु निःसंशयम्
श्रद्धापूर्वमतस्तदर्थमनिशं कार्यः प्रयत्नो महान् ।
कल्याणे प्रभुशासने प्रणिहितस्वान्तैर्नरैः पौरुषम्[1]
प्रारब्धम् भृशमश्नुते सफलतां सौख्यान्वितां शांतिदाम् ॥१८॥

---

१ 'पौरुष' की व्याख्या के लिए देखिए पृष्ठ. ३० श्लोक. १०

विश्वेशो न हि तोषमेति बहुभिः शुष्कैः स्तवैरर्चनैः
नैवाभ्यर्थनमन्त्रतन्त्रकृतिभिश्चाक्रंदनैर्भूरिभिः ।
सर्वप्राणिदयान्वितैः सुचरितैर्दीर्घैस्तपस्साधनैः
भूतानां हितकारिकर्मनिचयैरीशो ध्रुवं तुष्यति ॥१९॥

स्वार्थाय स्वमुखं न जातु पुरतः कस्यापि विस्तार्यताम्
श्रीशानः पुरुषो न चापि बहुभिः स्वाभ्यर्थनैः पीड्यताम् ।
सर्वज्ञे हृदयस्थिते स्वपददे किम्प्रार्थनाभिस्तवैः
आत्मोद्धारविधौ प्रसन्नमनसा यत्नः समाधीयताम् ॥२०॥

---

१ 'शिवानन्द लहरी' नामक एक स्तोत्र श्री शंकर भगवान के नाम से प्रसिद्ध है । उसमें एक श्लोक इस प्रकार है :-

नतिभिर्नुतिभिस्त्वमीश पूजाविधिभिर्ध्यानसमाधिभिर्न तुष्टः ।
धनुषा मुसलेन चाश्मभिर्वा वद ते प्रियकरं तथा करोमि ॥८६॥

मानों बेजार होकर कवि पूछ रहे हैं कि जब वैधानिक पूजा अर्चादिमार्ग से कुछ नहीं बन रहा है, तो क्या परत्मामा, जगत्कल्याण के ठोस श्रमिक कार्यों सें संन्तुष्ट होने वाले हैं ? उत्प्रेक्षा तो ठीक ही दिखाई देती है ।

२ श्रीमद्भगवतगीता में (१) परित्राणाय साधूनाम् (गी. ४-८) और (२) ददामिबुद्धियोगम् (गी १०-१०) ऐसी दो बातों के लिये परमात्मा ने स्वयं अभिवचन दे रखा है। अतः इनके लिए हमको परमात्मा से प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता नहीं है । ये तो वे स्वयं ही करनेवाले हैं । हमारा कर्तव्य हमारी सदभिलाषा की पूर्ति के लिए धर्म मार्ग से प्रयत्न-शील रहना ही है; प्रयत्नों की सफ़लता में कोई सन्देह नहीं हो सकता। इच्छा भावना और प्रार्थनाओं से कुछ नहीं बनता । ये केवल दिग्भ्रांति करा देने वाली बातें हैं । विमर्श के साथ 'प्रयत्न' यही प्रधान है । परमात्मा के विधि

श्रीशः कस्य कदापि किंचिदपि वा पुण्यं शुभं वाऽशुभम्
नादत्ते न ददाति यन्निगदितं सत्यं हि तन्नान्यथा ।

विधान ही ऐसे अकाट्य बने बनाएँ हैं, कि ऐसे प्रयत्नों को सफलता लाभ होना अनिवार्य है। जिन इच्छाओं और भावनाओं में प्रयत्न ही नहीं है वे बेकार हैं, स्वप्नतुल्य हैं। हाँ प्रार्थनाओं का एक उपयोग है; वह यह कि उनसे एक दृष्टि से उत्साह को बढ़ावा मिलता है कि परमात्मा हमारे पीछे हैं और हमारे प्रयत्नों को देख रहे हैं। यह तो बात सत्य है, और इससे हमारी प्रयत्न-शीलता बढ़ती है और फल लाभ हो जाता है।

फिर भी प्रश्न होता है कि यदि परमात्मा की पूजा आराधना तथा प्रार्थनाओं से हमारा कुछ भी बनता या बिगड़ता नहीं है, और यदि वे न तो हमको कुछ देते हैं और न हमसे कुछ लेते या चाहते भी हैं, तो फिर वे हमारे व्यवहारों की दृष्टि से, नहीं के समान ही होते हैं! ऐसी अवस्था में उनको मानने की ही क्या आवश्यकता है? प्रश्न तो ठीक है, और उसका उत्तर भी है, कि कोई आवश्यकता नहीं है, यदि आप न्याय नीति तथा सदाचार को माननेवाले हों। क्योंकि ये भी तो परमात्मा के मानों रूप भूत हैं जो व्यवहार के लिए पर्याप्त हैं।

उदाहरणार्थ यदि कोई कहे कि आकाश में जो बृहस्पति नामक ग्रह है, उसको ग्यारह चाँद हैं, मानने की आवश्यकता ही क्या है? हम तो अब तक एक भी चाँद नहीं है, ऐसा ही मानते आए हैं, और इससे हमारा कुछ भी बिगड़ा नहीं है। ठीक यही बात परमात्मा के विषय में, एक दृष्टि से चरितार्थ होती है। परन्तु सत्य की दृष्टि से हमको जानकारी होना भी अत्यावश्यक है। यदि आप बुद्धि प्रामाण्यवादी हैं और तर्ककुशल हैं, तो फिर आपको परमात्मा को मानना ही पड़ेगा; जिसके फलस्वरूप आप अपनी आत्मा में अखण्ड शांति और समाधान का अनुभव कर सकेंगे।

और यूँ देखा जाए तो परमात्मा की सिद्धि के लिए हमको इतनी गहराई में जाने की भी कोई ज़रुरत नहीं है। आप किसी डॉक्टर से पूछिए तो

किन्त्वेषोऽद्भुतभावनोऽस्य महिमा जागर्ति कल्याणकृत्
जन्तुर्येन शुभाशुभं वितनुते तत्तत्फलं विन्दते ॥२१॥

स्वाभिप्रायमिमं भृशं प्रकटयन् गीतासु चाह प्रभुः
नैवाहं प्रददासि पापमथवा कस्मै च पुण्यं शुभम् ।
कर्तृत्वं विदधामि कर्मणि तथा धर्मेऽपि नो कस्यचित्
स्वे स्वे कर्मणि यो रतः शुभकृती दक्षः स मेऽतिप्रियः ॥२२॥

मालूम होगा कि आपके शरीर के भीतर कैसे कैसे विचित्र यन्त्र और योजनाएँ बनी बनाई हैं। वे इतनी आश्चर्यकारी हैं कि उनकी पूरी जानकारी का पता अभी तक बड़े बड़े डॉक्टरों को भी नहीं लगा है। क्या ये सब यन्त्र किसी मानवी कारीगर ने बनाएँ हैं? इनके ऊपर तो हमारा कुछ भी वश नहीं चलता, प्रत्युत उन्हीं के वश में हमको सर्वदा रहना पड़ता है। यदि ये योजनाएँ किसी बुद्धि शील अति सूक्ष्मदर्शी निसर्ग की रची हुई हैं, तो यही हमारे परमात्मा हैं नाम कुछ ही रहे!

श्रीभगवद्गीता में भी नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र ने 'अहं वैश्वानरो' (गी. १५–३४) इत्यादि कहते हुए इसी बात का प्रत्यय दिलाया है। बृहदारण्यक उपनिषत् (३–४) 'उषस्त याज्ञवल्क्य' संवाद में भी इसी प्रकार का वर्णन और विवरण आ गया है। तात्पर्य जिनके अद्भुत 'प्रशासन' में सारे विश्व के व्यवहार अखण्ड और सुनियन्त्रित चल रहे हैं वही हमारे परमात्मा हैं। केवल वे हमारा कुछ उपयोग नहीं करते इस लिए उनको नहीं मानना यह स्वार्थी असमञ्जस की दृष्टि है। देखिए, निःस्वार्थ बुद्धि से खोज लगाने पर ही पाश्चात्य शास्त्रज्ञों को बृहस्पति के ग्यारह चन्द्रमाओं का पता लगा। ठीक इसी प्रकार यदि हम निष्काम बुद्धि से अनुशोधन करेंगे तो हमको भी 'तत्त्वदर्शन' होने में कोई सन्देह नहीं है।

दिव्यं मे शुभजन्मकर्मचरितं भव्यार्थ बोधप्रदम्
ये ज्ञातं भुवि दिव्यकर्मणि रता वर्त्मानुगास्ते मम ।
तेभ्योऽहं स्थिरबुद्धियोगमतुलं यच्छामि मत्प्राप्तये
तद्योगान्वितदिव्यकर्मकृतिनस्ते नित्यसंन्यासिनः ॥२३॥

धर्म न्यायविरोधिनः स्मरगणा ख्याता हि ते शत्रवः
त्याज्यास्ते बहुदूरतः सुधिषणैः क्षुद्राश्च या वृत्तयः ।
दिव्ये कर्मणि या त्वकर्मधिषणा सा शर्मदा मोक्षदा
सा शक्या खलु दिव्यकर्मणि सतां सा विश्वशान्त्यै भवेत् ॥२४॥

या पूजा ह्युपचारषोडशयुता लोके प्रसिद्धिं गता
साऽदिष्टा लघुमार्ग बोधनधिया सांकेतिकी शोभना ।
या हृद्या विहिता प्रभोरभिमता कर्त्तव्यरूपा परा
तत्त्वज्ञैर्जनकादिभिः सुकुशलैः सांऽगीकृता सूरिभिः ॥२५॥

---

१ वर्त्मानुगाः=अनुचर, भक्त । २ कामक्रोधादि विकार । ३ जितने उदार एवं लोककल्याणकारी कर्म हैं, उनको वेदान्तशास्त्र की परिभाषा से 'अकर्म' कहते हैं, क्योंकि वे स्वार्थवाले नहीं होने से बन्धक नहीं होते । इसी दृष्टि से ऐसे कर्म करनेवाले पुरुष को 'अकर्ता' कहते हैं । अतः स्पष्ट है कि इन पारिभाषिक शब्दों से कर्मों का सुतरां अभाव नहीं बतलाया जाता, प्रत्युत 'दिव्य कर्मण्यता' प्रदर्शित की जाती है । आत्मा, परमात्मा 'अकर्ता हैं' इसका अर्थ वे कोई कर्म ही नहीं करते ऐसा नहीं, प्रत्युत उनके कर्म दिव्य होते हैं ऐसा है । इसी को परिभाषा से 'नैष्कर्म्य' भी कहते हैं । अर्थात् यह अकर्मण्यता नहीं है । 'अकर्म' शब्द से वेदान्त शास्त्र, अकर्मण्यता या निरुद्यमता का उपदेश नहीं करता है । ४ पूजा आराधनादि विधानों से भक्ति प्रेम के संस्कारों को बढ़ावा मिलता है, यह तो ठीक है परन्तु इनके साथ यदि सत्कर्मण्यता न हो तो वे बेकार हैं; परमात्मा को खुशामद प्रिय नहीं है ।

ईशस्यार्चन पूजनादि विषये मिथ्या मतिर्यादृशी
लोके दृष्टिमुपैति तच्छतगुणा जप्ये विधौ दृश्यते।
विष्णोर्नामजपादि शुष्कविधिभिस्तत्स्तोत्रपारायणैः
ग्रन्थानां रटनै निरर्थकतया लाभः कथं सम्भवेत् ॥२६॥

एके सत्पुरुषा विलिख्य निभृतं श्रीरामनामाक्षरैः
साटोपान्बहुपुस्तकान्दधति तान्कोष्ठेऽथवा मंदिरे।
एतत्सर्वमनर्थकं स्फुटतरं साध्यप्रहाणाद्ध्रुवम्
रामस्याचरणं हि साध्यमनिशं रामस्य नाम्नो जपात् ॥२७॥

शब्दोच्चारण मात्रतो यदि भवेल्लाभः कश्चित्कस्यचित्
मुक्तिश्चापि भवेच्छुकस्य सहजा रामस्य नाम्नो जपात्।
आश्चर्यं हि महत्कथं नु विषमा भ्रांति र्हितापायिनी
लोकेषु प्रसृता ह्यनेकशतकै र्नाद्यावधि क्षीयते ॥२८॥

आयुर्नश्यति निद्रया प्रतिदिनं चालस्य खेलादिभिः
तद्दृष्ट्या वरणीय उक्तरटनैः कालात्ययोऽयं जपे।
इत्येतत्प्रतिपादनं न हितदं मोहप्रदत्वान्नृणाम्
मिथ्याभावितभावनो जपविधिस्त्याज्यास्तु दोषाः परे ॥२९॥

तस्मात्काल विहापनं न च कदा कार्यं हिताकांक्षिभिः
सारासार विचारयुक्तमतिभिश्चाध्यात्मदृष्ट्यन्वितैः।
साध्ये दृष्टिरतीव निर्मलधिया देया प्रमादं विना
साध्यं प्रोज्झ्य हि साधनं यदि भवेत्त्याज्यं हि तत्सर्वथा ॥३०॥

---

१ प्रभु रामचंद्रजी की दृढ़ सत्यनिष्ठा, उनका पितृवचन के परिपालन का कठोर व्रत, असीम स्वार्थत्याग, अपने भाइयों पर हार्दिक प्रेम, एक पत्निव्रत, सज्जनों का परित्राण और दुष्टों का तीव्र शासन, इत्यादि गुणों का जिस 'नाम-स्मरण' में अत्यन्त विस्मरण ही विस्मरण भरा पड़ा है, उसमें 'श्रीराम' नहीं हैं, और न वे केवल ऐसी चीख पुकार से आते भी हैं! जिस जप में उत्कर्ष, सद्विचार तथा सत्कर्मों के लिए महती प्रेरणा नहीं मिलती है, वह 'जप' नहीं है।

ध्यानाभ्यासविधौ कुशाग्रधिषणा ह्यावश्यकी सर्वदा
नानावृत्तियुता तथापि सुतरां लक्ष्यैकसंधायिनी।
धारावाहिकरीतिभिः परिणतं बह्वीषु यद्वृत्तिषु
ऐकाग्र्यं प्रबलं तदेव हितदं ज्ञेयैक लक्ष्ये स्थिरम् ॥३१॥

या जप्ये शुभभावना निगदिता सम्पादनार्था हि सा
तद्द्वारा सुकरं भवेत्सुमनसां साध्यस्य सम्पादनम्।
यज्ज्ञेयं न तु तद्विनैव यतनैः प्राप्तं भवेत्कर्हिचित्
तत्त्वान्वेषण बुद्धियुक्त पुरुषै ध्येयः परात्मा प्रभुः ॥३२॥

---

१ परमार्थ या अध्यात्मविद्या यह बुद्धि प्रामाण्यवाला शास्त्र है, इसमें भावनाओं से कुछ नहीं बन पाता। यद्यपि 'तज्जपस्तदर्थ भावनम्' ऐसी 'जप' शब्द की व्याख्या पातञ्जलयोग समाधिपाद सूत्र २८ में दी गई है, तथापि 'भावनम्' का आशय मन ही मन किसी मन्तव्य को कल्पनाओं या भावनाओं द्वारा बना लेना और उसकी मानसिक आवृत्ति करते रहना नहीं है, अपि तु 'अर्थ' को सम्पन्न करा लेना है। यहां अर्थ शब्द से सम्पाद्य वस्तु, प्राप्तव्य वस्तु, अर्थात् पुरुषार्थ का बोध होता है। एवं 'जप' शब्द का अर्थ बहुत गम्भीर है, परमात्मा का यथार्थ ज्ञान करा लेना है, केवल नाम का रटना या किसी आकृति का लगातार आवर्तन करते रहना नहीं है, समझ लेना है।

मनः संहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थ चिन्तनम्
अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः।

स्पष्ट है कि जप में तत्त्वचिन्तन और मौन, एवं मनन की महती आवश्यकता है जिसके लिए तत्पर वृत्तियों का रहना भी आवश्यक है। इस रीति से जो निश्चय होता है उसी का नाम समाधि है।

तत्त्वावबोधएवासौ वासनाक्षयपावकः
प्रोक्तः समाधिशब्देन न तु तूष्णीमवस्थितिः
(महोपनिषत् अ. ४ श्लो. १२)

समाधि की साधनावस्था में प्रयत्नशीलता तो रहनी ही चाहिए, अर्थात् अनेक उपकारक वृत्तियों का रहना भी आवश्यक है। इसके बाद 'समाधि' की अवस्था में, एवं चित्त की निश्चयावस्था में प्रयत्नवाली वृत्तियाँ तो स्वयं ही शान्त हो जाती हैं। परन्तु दूसरी वृत्तियाँ आती ही नहीं सो बात नहीं। क्योंकि ऐसी वृत्तियाँ 'तत्त्वावबोध' को कोई बाधा नहीं कर पाती। और फिर, ज्ञानी पुरुष को दुर्वृत्तियाँ तो छू भी नहीं सकती। अर्थात् उसकी सारी भावनाएँ शुभकारक ही होती हैं। एवं किसी भी दृष्टि से समाधि का अर्थ चित्त की पाषाण रूपता नहीं है।

सारांश 'भावनम्' या 'सम्पादन' का आशय 'ज्ञान' या 'तत्त्वावबोध' को भावनाओं से अपने कल्पना राज्य में गढ़ लेना, या किसी कृत्रिमता से बना लेना नहीं है। तत्त्वावबोध एक स्वयं सिद्ध वस्तु है और वह हमको उपलब्ध न होने से हमें प्राप्त करा लेना तो आवश्यक है। अर्थात् जो कुछ प्रयत्नशीलता है वह इस उच्च तत्त्व की खोज में होनी है, इसको ढकने वाली अविद्या, या जो कुछ प्रतिबन्धक हैं. उनको हटाने के लिए है; वे यदि दूर हों तो तत्त्वावबोध स्वयंसिद्ध है।

समाधि के सम्बन्ध में बहुत से लोगों के अन्तःतकरणों में विचित्र-सी धारणाएँ बैठ गई हैं, देख कर अचम्भा होता है। श्री स्वामी मधुसूदन सरस्वती ने अपनी भगवद्गीता की व्याख्या में छठवें अध्याय के श्लोक ६ से २६ तक टीका लिखते हुए जो सुन्दर प्रकाश डाला है देखते बनता है।

कहना न होगा कि कभी कभी अनेक बौद्धिक श्रमों के बाद अथवा अन्य कई कारणों से चित्त में कुछ थकावट तथा उदासीनता छा जाती है,

पूजाध्यानसमाधियोगविषये मिथ्या मतिर्यादृशी
लोकेषु प्रसृता ततोऽप्यतितरां तत्त्वावबोधं श्रिता ।
माहात्म्याद्विषयस्य तद्विवरणं शक्यं न चास्मिंस्थले
स्वातन्त्र्येण हि तत्प्रमाणसहितं कार्यं भवेदादितः ॥३३॥

नानामार्गजुषां पृथग्विधधियां वैचित्र्य कोलाहले
गम्भीरेऽपि परार्थनिर्णयविधौ पाश्चात्यशास्त्रं क्षमम् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतराणुदर्शि गहनं श्लक्ष्णार्थदं सम्भवेत्
इत्याभाति पुराणनव्यरचितग्रन्थानुसन्धानतः ॥३४॥

आस्तांतत्पुनरत्र कर्ममहतौ सम्प्रार्थयेऽहं मुदा
सत्कृत्यैरिह लभ्यते सुकृतिभिः पुण्यं सुखं सद्यशः ।
राष्ट्रस्याभ्युदयोऽपि पौरुषयुतैः सत्कर्मभिः प्राप्यते
लोकानन्दकरः समस्तसुकलासंतानजैवातृकः ॥३५॥

संसिद्धिर्निजकर्मणा सुनियतेत्यादिष्टवान्यत्प्रभुः
तत्किंचित्परिदर्शितं भगवता स्वातन्त्र्यदानेऽधुना ।
स्वातन्त्र्यार्थमहर्निशं प्रयतितं विघ्नेषु घोरेषु यत्
यत्रात्मापि समर्पितः सुकृतिभिस्तेनैव तुष्टः प्रभुः ॥३६॥

जिसको हटाने के लिए निश्चिन्त व शान्त रहना आवश्यक होता है। इस प्रकार विश्रान्ति तो अवश्य ही लेनी चाहिए। परन्तु इससे धारणा ध्यान वाली समाधि अलग वस्तु है।

१ यही कारण है कि आत्मविज्ञान या तत्त्वज्ञान के सम्बन्ध में द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, चार्वाक, मीमांसक, सांख्य, वैशेषिक, न्याय, पाशुपत इत्यादि अनेक विभिन्न मत उत्पन्न हुए हैं। २ जैवातृक : सदा के लिए रहने वाला।

अस्मद्दास्य विमुक्तये प्रयतितं यैः कर्मवीरैर्भृशम्
तेषां सच्चरितं सदा हृदि जनैर्धार्यं समुत्तेजकम् ।
तन्मध्ये प्रमुखः स्वभालतिलकः श्रीहिन्द्देव्याः प्रियः
स्वातन्त्र्यार्थरणे पुरःसरपदः श्रीलोकमान्यःसुधीः ॥३७॥

आर्तत्राणदृढव्रतः प्रियवचा गान्धी महात्मा क्षमी
स्वातन्त्र्यप्रधने[1] शमास्त्रनिपुणोऽहिंसापरः सत्यवाक् ।
शांतिक्षांतियुगप्रवर्तकगुरुः शत्रोर्मनोमोहनः
प्राच्यानां सुहृदग्रणीः प्रभुपरो देशस्य भक्तोत्तमः ॥३८॥

धीरो वल्लभ भाइ सिंहसदृशः सावर्करो धैर्यवान्
श्रीराजेंद्रमहानुभावविभवो राष्ट्राधिपस्तत्त्ववित् ।
भास्वद्विश्वयशा ह्युदारचरितो मन्त्री प्रधानो मणिः
प्रेयान्पण्डितनेहरुर्बहुगुणी श्रीराजगोपः सुधीः ॥३९॥

भूदानश्रमयज्ञशिक्षणगुरुर्भावे विनोबा मुनिः
लाला लाजपतिः सरोजसुषमा देवी, सुभाषो विधुः ।
श्रद्धानन्दयतिः कृती कुलपतिः श्रीमालवीयः शुचिः
सर्वे त्यागधनाः परेऽपि कृतिनः संगुप्तनामक्रियाः[2] ॥४०॥

अन्ये चापि सहस्रशः समभवन्पूर्वेतिहासे शुभे
सर्वेषामभिधानमानकरणं नैवात्र शक्यं भवेत् ।
तस्माद्वर्णनमातनोमि कतिचिद्व्यात्मनां भक्तितः
तेष्वाद्यस्तु समर्थ आदृततरः श्रीरामदासो महान् ॥४१॥

---

१ प्रधन=संग्राम २ इस नामावली में और भी बहुत नाम आ सकते हैं परन्तु लेखक उनको दे नहीं सका, अतः क्षमा प्रार्थी है ।

वीरः श्रीशिवराजछत्रनृपतिर्माता तदीया 'जिजा'
तेजोधैर्ययुता तथा सुधिषणाऽहल्या सती होळ्करी ।
झाशीदेशविभूषिणी सुचरिता लक्ष्मीः सुवीराग्रिमा
एताभिर्धवलीकृतं त्वतितरां श्रीहिन्दमातुर्यशः ॥४२॥

स्वातन्त्र्यार्थमहर्निशं प्रयतितं राणाप्रतापादिभिः
धौरेयैः स्वपराक्रमैकविभवैः पञ्जाबसिंहैस्तथा ।
धन्यैः श्रीगुरुनानकादिपुरुषैर्धर्मप्रतिष्ठापरैः
शौर्यं यत्प्रकटीकृतं परिवृढं लोकेषु तद्विश्रुतम् ॥४३॥

माहाराष्ट्रजनैः पराक्रमधनैः स्वाधीनता सिद्धये
श्रीबाजीप्रभृति प्रधानपुरुषैः शिंदे तथा होळ्करैः ।
गायक्वाडमुखोदयैर्बहुकृतं शार्दूल[1]विक्रीडितम् ।
पुण्यश्लोकसमाः प्रभोः सुभजका राष्ट्रीयसन्ता इमे ॥४४॥

एतेषां स्मरणं कृतज्ञमनसा कार्यं प्रभाते जनैः
देशस्याभ्युदये तथा स्वविषये कार्याः कृतीः शोभनाः ।
ज्ञातव्यं खलु कर्म पौरुषयुतं धर्म्यं विमर्शान्वितम्
श्रीशस्यार्चन पूजनादिविषये न्याय्यं भवेत् साधनम् ॥४५॥

एतच्चाप्यनुशीलयंतु विबुधा देशस्य भक्तोत्तमाः
स्वातंत्र्ये तु महद्भयं प्रतिदिनं स्वाभाविकं वर्तते ।
तच्चाप्यंतरवर्ति शत्रुनिचयात् भीमं यथा दारुणम्
बाह्यस्थाद्रिपुसंचयाच्च हि तथा विक्षोभकं संभवेत् ॥४६॥

---

१ शार्दूल=व्याघ्र। जिस वृत्त में यह स्तोत्र रचा गया है उसका नाम भी 'शार्दूलविक्रीडीत' है। यहाँ 'व्याघ्र जैसा पराक्रम' ऐसा अर्थ है।

अस्मन्मध्यगता हि ये कुमतयो धर्मस्य विद्वेषिणः
कॉम्यूनिस्टकपूयमार्गचरणा हिंसापरा निर्घृणाः ।
प्राथम्येन त एव घोररिपवोऽस्माकं विपक्षे स्थिताः
तेषां हृत्परिवर्तनं सुकठिनं कार्यं प्रयत्नैः परैः ॥४७॥

अस्मद्दास्यविमोचनार्थममितै र्वीरैः सुधीभिर्यथा
विक्रान्तं सुमहत्ततः शतगुणं विक्रान्तितव्यं बुधैः ।
स्वातंत्र्यस्य सुरक्षणेऽपि सुतरां कृत्वा दृढं निश्चयम्
एतद्ध्येव निजं स्वधर्मसदृशं पुण्यं व्रतं जानथ ॥४८॥

अन्यच्चापि महत्तरं शुभकरं कार्यं प्रकृष्टं निजम्
आपाद्यं सकलैर्मनस्तनुधनै रस्मद्धिताकांक्षिभिः ।
यच्चास्मद्बहुसंख्यबान्धवजनैः सर्वापदामास्पदम्
दारिद्र्यं स्वनुभूयते विषसमं हीना च दीना स्थितिः ॥४९॥

तस्या नाशनमाशु शिक्षण धनैः कार्यं नवीनोद्यमैः
अस्पृश्यत्व निवारणादि यतनै र्न्याय्यैश्च सत्कर्मभिः ।
अस्पृश्यत्वमतीव निर्घृणतरो दोषः स्वदेशे स्थितः
योऽस्मद्दुर्गतिकारणं बहुविधं दास्यस्य दैन्यस्य च ॥५०॥

तस्यामूलनिबर्हणं समुचितै र्यत्नैस्तथा साधनैः
आपाद्यं विधिभि र्विधेयकचयैरन्यैरुपायैः शुभैः ।
अस्मन्मंगलमंदिरादि बहुषु स्थानेषु तीर्थेषु च
तेषां स्वाधिकृतोऽस्तु तोषजनकः पूजासपर्याविधिः ॥५१॥

---

१ कपूय = बुरा, निन्द्य । २ चरणा = चलनेवाले । ३ निबर्हण = पूरा नाश

गोविप्रश्वपचादिषु प्रभुरपि प्राह स्वयं स्पष्टतः
साम्या दृष्टिरतीव शुद्धमनसा कार्या विवेकान्विता ।
देवस्यैव निकेतने यदि तदीयाज्ञा न मान्या भवेत्
एताभिः कृतिभिर्वदन्तु सुजनास्तुष्टः कथं स्यात्प्रभुः ॥५२॥

सत्यान्नास्ति परं हितं शुभकरं पुण्यं तथा शोधनम्
सर्वेषां प्रियदं सुबुद्धिजनकं सत्यं हि धर्मो मतः ।
दीनानामहितप्रदोऽनयकरः दैन्यार्तितापप्रदः
सोऽधर्मः स कदापि नार्हति जने सन्मान्यतां पूज्यताम् ॥५३॥

'बाबा' वाक्यमिति प्रमा न हितदा धिक्कारिता सज्जनैः
यस्तर्केण समन्वितः स भगवान् प्राह स्वधर्मो मनुः ।
श्रीविश्वेश्वरमंदिरे यदि भवेद्विश्वप्रजानां गतिः[1]
तर्ह्येतच्च तदीयनाम शुभदं सार्थं सुबोधं भवेत् ॥५४॥

अन्याय्यो विषमो हि दर्शनविधिश्चाज्ञैर्जनै र्निर्मितः
वात्सल्यं करुणा दया भगवतो ज्ञाता न तै र्बन्धुभिः ।
किं गंगाम्बुनि मज्जिते हरिजने गंगैव दुष्टा भवेत् ?
श्रीविश्वेश्वर दर्शने हरिजनैः भ्रष्टः कथं विश्वदृक् ? ॥५५॥

विश्वेशो यदि दुष्यतां न च मनाग्याति स्वयं पावनः
तस्यार्चाविधिपूजनादिकरणे मग्नः कथं दोषभाक् ? ।
साश्चर्यांधपरम्परा ह्यनुसृता प्रज्ञाविहीनै र्जनैः
त्याज्या सा प्रथमं दृढेन मनसा प्राप्ते स्वराज्ये शुभे ॥५६॥

नानासंकटकारिभिर्बहुविधैरेतादृशैः कारणैः
भ्रान्त्युन्मादयुतैः प्रमादबहुलैः कार्यैश्च दोषान्वितैः ।

---

१ विश्वप्रजानां गतिः = सभी लोगों को प्रवेश और दर्शन

साहस्राब्दिकदीर्घकालिकमहोऽस्माभिः परं दारुणम्
भुक्तं दास्यमतीव निर्घृणतरं नः संस्कृतेर्नाशनम् ।।५७।।

तस्माज्जागृत जागृत प्रणयिनश्चालम्बयध्वं हृदा
गीताप्रोक्तमतीवनिर्मलशुभं दैवं सुवित्तं परम् ।
तद्दृष्ट्या चिनुत स्वधर्ममलं सानातनीं संस्कृतिम्
चित्ते स्थाप्य दृढां, स्वदेशहितदं चैक्यं कुरुध्वं बुधाः ।।५८।।

सम्पत्ति र्धनिका भवत्तु बहुधा दैवेन या स्थापिता
तस्याः सम्प्रति सद्व्ययस्य समयो वर्वर्ति यूयं ततः ।
साहाय्यं स्वधनै र्नवोद्यमकृते लोकस्य संयच्छत
यंत्रोद्योगसमुच्चयान् रचयत स्वीयोन्नतेः कारणात् ।।५९।।

जीर्णास्ताः स्वकलाः कुरुध्वममला नव्याश्च ता उज्ज्वलाः
पाश्चात्यांश्च निजान्सुविज्ञपुरुषान्कृत्वा गुरून् कर्मशः ।
अस्मद्देशभवं हि वस्तुनिचयं क्रीणंतु सर्वे जनाः
मैवांगीकुरुतान्यदत्तमपि सद्वस्त्वन्यदेशोद्भवम् ।।६०।।

किं वाच्यं बहुना स्वराष्ट्रसुगतौ यद्यद्भयनर्थावहं
तत्तत्त्याज्यमतीव जागृतधिया देशस्य भक्तोत्तमाः ।
एवं राष्ट्रमहत्वसाधनविधौ संयोजयध्वं बलम्
स्वं राज्यं पुनरुच्छ्रयध्वमखिले भूमण्डले सर्वथा ।।६१।।

ज्ञातव्यं खलु सर्व साधकजनैरेतद्रहस्यं प्रियैः
* उत्साहो बलवान् विमर्शसहितः संजीवकोद्धारकः

---

* इस सम्बन्ध में श्री वाल्मीकि रामायण के निम्न श्लोकों का स्मरण हुए बिना नहीं रहता :—

निर्वेदः सुतरां विनाशकरणो नृणां जराव्याधिदः
दौर्बल्यं विमनस्कतां विदधते दैन्यं च कष्टान्बहून् ॥६२॥

वृद्धश्चापि बलीयुतो यदि भवेदुत्साहयुक्तः पुनः
तारुण्यं समवाप्नुयात्सुखकरं चारोग्ययुक्तं वपुः ।
वैपर्यात्सुदृढो युवा यदि भवेदुत्साहहीनो नरः
तूर्णं दुर्बलतां जरां च सरुजां यायात्स चिन्तां वहन् ॥६३॥

'निर्वेदो' हि रुजा मता भयकरी तस्याश्चिकित्सामिमाम्
व्याधिज्ञाःप्रतिपादयंति कुशला ईशस्य भक्तोत्तमाः ।
स्वान्तः स्फूर्तिकरं 'विमर्श' गदितं चापीयतामौषधम्
सत्कृत्यैः सहसेवितं वितनुते सौहार्दमोजस्करम् ॥६४॥

अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयम्
कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद्ब्रवीम्यहम् । ४-४९-६
अनिर्वेदः श्रियो मूलम् अनिर्वेदः परं सुखम् । ५-१२-१०

अनिर्वेद का अर्थ उत्साह है, कहना न होगा कि यह 'दैवी सम्पत्ति' वाला उत्साह है. धर्म और नीति नियमों का विरोध करनेवाला नहीं ।

१ निर्विण्णता या निरुत्साह के लिए यदि कोई सफल दवा है तो वह सारासार सर्वांगीण विवेक और शीघ्रता से किसी अच्छे काम में लग जाना ही है । अपने मित्रों से सलाह लेना भी आवश्यक है । कुछ नहीं तो तुरन्त उठ कहीं दूर भटक आना भी अच्छा है । परिश्रमों के बाद जब नींद पा कर मनुष्य उठता है तो वह हलका होता है । फिर प्रभावोत्पादक विचारों से उसे उत्साह भी आ जाता है । देखना चाहिए कि संसार में निरुत्साह के प्रसंगों से कौन बचा है ? वर्तमान युग के प्रवीण शास्त्रज्ञ स्वर्गवासी आइन्स्टाईन् ने लिखा है कि उनकी सौ कल्पनाओं में, निन्यानवे बेकार होती थीं और एकाध ही यथार्थ निकलती थीं ! संसार की तो यही घटना है, जान कर अपनी उन्नति के लिए आगे बढ़ना हमारा कर्तव्य है । एक कवि ने कहा है :—

जीवानां मनसि प्रधावति महा या वासनानां सरित्
संयुक्ता बहुभिः शुभाशुभफलैः सद्वृत्तिदुर्वृत्तिजैः ।
तस्याः संयमनं दृढेन मनसा कार्यं विचारैः शुभैः
निष्कास्याश्च कुवृत्तयः सुनियतं स्थाप्यं मनः सत्पथे ॥६५॥

प्राज्ञेनात्महितैषिणा प्रतिदिनं ध्यातव्यमेतत्स्फुटम्
किं किं चाद्य मया कृतं पशुसमं किंचाप्युदारं शुभम् ।
कार्यो निश्चय एष यत्सुचरितं तत्त्वेव सम्पादये
यच्चान्यत्परिगर्हितं सुकृतिभिस्त्यक्ष्यामि तत्सर्वथा ॥६६॥

यावन्नैव मया किमप्यपकृतं कस्यापि धीपूर्वकम्
नैवं चाप्यपभाषितं न च मनाग्दुश्चिन्तितं कस्यचित् ।
तावत्कारणमेव नास्ति सुतरां दुःखस्य खेदस्य मे
इत्येवं परिचिन्तयन्सुमनसा कर्तव्यनिष्ठो भवेत् ॥६७॥

स्वं कार्यं सुविशुद्धनिश्चितधिया प्रारम्भयेत्सज्जनः
धैर्यं नैव परित्यजेत्प्रभुपरः कुर्यादिमं निश्चयम् ।
श्रीविश्वेशविसृष्टकर्मनियमै हृद्यैः प्रियैर्धार्मिकैः
प्राप्स्ये स्वीयमभीष्टमात्मसुखदं निर्जित्य विघ्नान् बहून् ॥६८॥

सर्वदा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः
विद्यते न हि कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः ॥१॥
कस्यचित्किमपि नो हरणीयं मर्मवाक्यमपिनोच्चरणीयम् ।
श्रीपतेः पदयुगं स्मरणीयं लीलया भवजलं तरणीयम् ॥२॥

२ रुजा = बीमारी । ३ देखिये पृष्ठ ३१ श्लोक १४ ।

अज्ञो जंतुरनीश एव सुतरां स्वीये सुखे वाऽसुखे
स्वर्गं वा नरकं नियोजित इव प्रेयात् प्रभोराज्ञया।
इत्थं यस्य मतिः परिभ्रमयुता ज्ञेयः स शुद्धः पशुः
इत्यूचे भगवान् प्रशांतहृदयः प्राज्ञो वसिष्ठो मुनिः ॥६९॥

आशाया[2]ः परमं हि दुःखमनिशं नैराश्यमेवातुलम्
सौख्यं ये प्रवदंति पण्डितजना नैतत्सुयोग्यं भवेत्।
आशा या विहिता स्वधर्मसहिता त्याज्या न सा कर्हिचित्
आत्मोद्धारविधौ मता सुबलिनी श्रेयः प्रदा स्फूर्तिदा ॥७०॥

नैराश्यं भणितं तथा निरुपमं सौख्यं सुतुष्टिप्रदम्
'तत्त्वज्ञान' महो निरुद्यमवतामेतद्दरीदृश्यते।
यद्यच्चास्ति विमर्शधर्मरहितं तद्ध्येव दुःखप्रदम्
यद्यच्चास्ति विमर्श धर्म सहितं पुण्यं हितं जानथ ॥७१॥

दौराश्यं न समाश्रेद्हितदं नैराश्यमेवापि नो
कामक्रोधमदामनोविकृतयस्त्याज्यास्तु ता दूरतः।
याञ्चावृत्तिरतीव खेद करिणी देहीति धिग्जीवितम्
दक्षो धर्मपरः सदुद्यमरतः सौख्यं प्रतिष्ठां व्रजेत् ॥७२॥

जन्तूनां निजकर्मधर्मजनितं यस्मात्सुखं वाऽसुखम्
तस्मान्नास्ति हि कारणं विमृशतः दुःखस्य खेदस्य वा।
धैर्येणैव सहेत यत्परिणतं स्वानुष्ठितात्कर्मणः
आगामिन्यतिसावधानमनसा युक्तो भवेत्कर्मणि ॥७३॥

---

१ देखिये पृष्ठ ३० श्लोक ८। २ 'आशायाः परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्' यह कहावत 'निरुद्यमता' को ही पुष्ट करनेवाली है। हाँ दुराशा करना ठीक नहीं है, परन्तु 'नैराश्य' को ही परम तत्त्व ठान लेना कदापि ठीक नहीं हो सकता।

मान्यं यच्च कदा कदा क्षितितले तापप्रदं कारणम्
दुःखानां प्रभवेद्विचित्रघटनासंजातमाकस्मिकम् ।
वैचित्र्याज्जगतो भवेत्सुमहतां घोरः प्रसंगो महान्
तस्मान्नैव विचालयेन्निजमनः सम्यग्विचारे स्थितः ॥७४॥

एवं नास्ति कदापि कारणमहो दुःखस्य शोकस्य वा
यस्यांवापि विवेकधी र्विपदवस्थायां भवेत्पूरुषः ।
श्रेयांसि स्वहितानि विघ्नबहुलान्येतन्न चित्रं भवे
धीरा ये च कृतोद्यमा न विरमंत्यंगीकृतात्कर्मणः ॥७५॥

उद्योगैः खलु लभ्यतेऽत्र सुजनैः स्वेष्टं फलं दुर्लभम्
यत्नानां फललम्भनान्नवनवोत्साहः समुत्पद्यते ।
यत्नश्चेद्विफलो भवेदपि तदा शोकस्य किं कारणम् ?
प्राज्ञानां सुविचारतः स्वहितदो मार्गः समालम्ब्यताम् ॥७६॥

कार्यं[1] तस्य विनष्टमेवसुतरां यो विश्वसेन्नात्मनि
स्वात्मप्रत्ययपूर्वकोद्यमवतः सिद्धिः सदा निश्चिता ।
सौख्यं चापि तदीयमेति विलयं योऽन्यावलम्बी भवेत्
स्वायत्तं हि सुखं सदा प्रियकरं नान्यद्वशं कस्यचित् ॥७७॥

---

१ समर्थ श्री रामदास की उक्ति है :—

जो दुसऱ्यावरी विश्वासला । त्याचा कार्य भाग बुडाला
जो आपणचि कष्टत गेला । तोचि भला

(दासबोध १९-९-१६)

यह कितनी उत्तेजनापूर्ण तथा मर्मवाली चेतावनी है ! ठीक यही बात सुख विद्या ज्ञान धन इत्यादि के लिए भी उपपन्न होती है, जो श्लोक ७७, ७८, तथा ७९ में ध्वनित की गई है ।

विद्याज्ञानधनादिसाधनविधौ स्वायत्तता सिद्धिदा
कष्टोपार्जितसाधनैर्निजकृतैः स्याज्जीवितं सौख्यदम् ।
वैपर्याद्विकलं विडम्बनसमं स्याज्जीवितं नीरसम्
स्वायत्तत्वमतिप्रियं हितकरं स्फूर्तिप्रदं सर्वथा ॥७८॥

स्वानन्दं न च हापयेद्बहुविधान्कार्यान्समापादयन्
स्वानन्दस्तु सदा स्वपौरुषभृतः, नो भावनाभावितः ।
व्यर्थे काल्पनिके सुखे न हि सुखं तद्गर्हितं सज्जनैः
ज्ञेयं तत्तु 'पलायनं' स्वसुखतः भ्रांत्यां कथं स्यात्सुखम् ? ॥७९॥

तस्मात्कार्यपरो भवेद्विगतभीर्ध्येयैकनिष्ठः पुमान्
शक्याशक्यविचारणाबलयुतः सर्वं समालोचयेत् ।
क्रोधद्वेषपरो भवेन्न च कदा शत्रौ तथाऽन्ये जने
द्वेषाग्निर्हृदयं दहेदनुदिनं त्याज्यः स सन्तापकृत् ॥८०॥

प्रद्वेषो द्विषतां भवेन्निजमनः क्षोभाय दुःखाय च
क्षोभो यो मनसः स एव हृदये दौर्बल्यमापादयेत् ।
दौर्बल्याच्च पुनर्भवेद्रिपुबलोत्साहस्य संवर्धनम्
तस्माद्द्वेषगुणं त्यजेदतितरां द्रुह्यत्सु चारातिषु ॥८१॥

---

२ श्लोक ८० से ८३ तक लेखक ने स्वर्गवासी महात्माजी के तत्त्वज्ञान का अनुवाद करने का प्रयास किया है। क्रोधद्वेषादि विकारों से दूसरों की कोई हानि नहीं होती प्रत्युत हमारी ही बहुत हानि हुआ करती है। ये विकार हमको भुलावे में डालते हैं, दीवाना बना देते हैं, और इस रीति से बहुत अत्याचारों के भी कारण हो पाते हैं। अतः इनको त्यागने से हम दूसरों का कोई उपकार नहीं करते हैं अर्थात् हम हमारा ही बहुत लाभ करते हैं इसमें संदेह नहीं है।

नास्यार्थौ रिपवः प्रदुष्टचरणा देशस्य विद्रोहकाः
नो वध्या परमोच्चशांतिसहितैः सत्वाढ्यशीलै र्नरैः ।
शत्रूणां प्रतिघातनं विधियुतं स्वावश्यकं धर्मतः
स्मर्तव्यं त्विदमेव निग्रहविधौ द्वेषस्य नो कारणम् ॥८२॥

तेषां हृत्परिवर्तने प्रथमतः कार्यस्सुयत्नस्ततः
योक्तव्याश्च सुयुक्तयो बहुविधाः सामाद्युपायान्विताः ।
नो चेच्चापि कठोरतीव्रगदितैरन्यैरुपायै र्बलात्
सम्पाद्यं स्वहितं तथा रिपुहितं मार्गैस्सतां शोभनैः ॥८३॥

धन्योऽसौ मनुजःस्वकीयचरितैर्यः प्रीणयेत्सज्जनान्
अन्येषामुपयोगि कार्यकरणे स्वानन्दलाभः सताम् ।
स्वानन्दस्तु स एव शोभनगुणो योऽन्यान्समुल्लासयेत्
स्वानन्दाम्बुधिगाहने कुशलिनां शोकस्य किं कारणम् ? ॥८४॥

प्राज्ञानां किल कामधेनुरपरा शुद्धावदाता मतिः
दुग्धे याऽभ्युदयं रुणद्धि विपदः सूते यशांसि प्रिया ।
प्राज्ञानामधिकं बलं प्रभवति प्राप्ते परे संकटे
अक्षोभ्या[1] हि भवंति ते सुकृतिनस्त्वेवं हि तल्लक्षणम् ॥८५॥

किं सम्पाद्यमतंद्रितेन मनसा, विद्या, बलं, पौरुषम्
किं वाऽलंकरणं सतां प्रियकरं, शीलं प्रभावान्वितम् ।
कः शत्रु, र्निजचित्तविप्लवकरो[2] दुर्वासनासश्रयः
किं मित्रं, सदसद्विवेक निपुणः स्वान्ते[3] विमर्शोदयः[4] ॥८६॥

---

१ अक्षोभ्याः = किसी भी विपत्ति में जो विचलित नहीं होते ।
२ विप्लवकरः = धूम मचानेवाला, क्षोभकारी ३ स्वान्तः = हृदय
४ विमर्श = सद्विचार, यथार्थ ज्ञान ।

किं शास्त्रं, श्रवणेन यस्य गलति ध्वान्तं[1] स्वचित्ते स्थितम्
को धर्मोऽभ्युदयादिमुक्तिफलदः, कश्चार्थ, ईशे रतिः।
कः कामो, जनतार्तिदैन्यहरणं न्याय्ये पथि स्थापनम्
को मोक्ष, श्चरितं निरंकुशसुखं[2] तेजस्विधर्मान्वितम् ॥८७॥

मोक्षो नास्ति दिगंतधामनि क्वचिन्नैवांतराले न खे
पाताले न च भूतलेऽद्रिशिखरेऽरण्ये तथा सागरे।
साऽवस्था न च मृत्युना व्यवहिता, नैर्मल्यपूर्णा परा
सम्यग्ज्ञानयुता निरंकुशा सुखा चात्रानुभाव्या स्थितिः ॥८८॥

एवं पौरुषमेव भक्तिसुलभं त्वालम्बनीयं बुधैः
लोकानां हितमार्गदं सुखकरं साम्यप्रतिष्ठाकरम्।
सर्वप्राणिषु भ्रातृभाव जनकं न्यायप्रदं शांतिदम्
देशस्याभ्युदयादिगौरवकरं चात्मप्रमोदावहम् ॥८९॥

श्रीशे येन समर्पितं स्वहृदयं सर्वाणि कर्माणिच
सिद्धिस्तस्य यशोन्विता सुनियता स्वान्तस्य शुद्धिर्ध्रुवा।
अध्यात्मं यदि चिन्तयेत्स मतिमान् श्रुत्यर्थमालोचयन्
तत्त्वज्ञैः सुविचारयन्निज हृदि ध्यायन्परेशं परम् ॥९०॥

---

१ ध्वान्त = अन्धेरा। २ निरंकुशसुख = जिस सुख को सीमा नहीं, ऐसा सुख या आनन्द; 'अत्र ब्रह्म समश्नुते' (काठकोपनिषत् ६–१४). 'हस्तामलक' स्तोत्र के छटवें श्लोक पर टिप्पणी लिखते हुए शंकर भगवान् कहते हैं :—

'जीवतस्तावत् तत्त्वज्ञानमुत्पद्यते न तु मृतस्य'

क्षिप्रं तस्य सकृद्विभानममलं ज्ञानं परं प्रोल्लसेत्
सर्वेषां विशदं विशालहृदयः संबोधयेत्स श्रितान् ।
सर्वं तस्यभवे त्सुनिश्चयकृतं लोकस्य कल्याणकृत्
चारित्र्यं खलु तस्य सोज्ज्वलशिवं चादर्शपूर्णं भवेत् ॥११॥

तत्वज्ञानसुनिश्चितार्थहृदयो यो वीतरागः क्षमी
धर्मज्ञः सुविचारवान्प्रभुपरो निष्कामभक्तः शुचिः ।
भूतानां हितकर्मकृत् स रमते सत्कार्यनिष्ठः सुखी
स्वानन्दामृतवारिधौतसुमनाः प्रोल्लासपूर्णः सदा ॥१२॥

ज्ञानानन्दरसालयं श्रुतिपदैर्वेद्यं परं शान्तिदम्
ध्येयं चाखिल योगिभि र्मुनिमनोहंसावतंसं प्रियम् ।
लीलासृष्ट जगत् त्रयं सुविमलं प्रत्यक्स्वरूपं शिवम्
त्वामीशं शरणं व्रजामि सहजानन्दोज्ज्वलं पावनम् ॥१३॥

---

१ श्री समर्थ रामदास लिखते हैं :—

जितुकें कांहीं आपणासी ठावें । तितुके हळु हळु सिकवावें ।
शाहाणे करून सोडावे । बहुत जन ॥

(दासबोध १६-१०-१४)

अपने को जो कुछ आता है, वह दूसरों को सिखा देना, समझा देना यह ज्ञानी पुरुषों की रीति है ।

२ ज्ञानी पुरुषों का आचरण 'बालोन्मत्तपिशाचवत्' रहता है ऐसा विचित्र प्रतिपादन कुछ ग्रन्थों में मिलता है । परन्तु यह कल्पना भ्रांति मूलक और जनता को संभ्रम में डालनेवाली है, अतः त्याज्य है । क्या श्रीकृष्ण भगवान् या श्री याज्ञवल्क्यजी या जो दूसरे बड़े बड़े जो आचार्य हुए हैं उनका आचरण इस प्रकार का था ? हमारे समाज में जो अनेक भ्रांत धारणाएँ प्रचलित हैं उनमें यह भी एक है ।

योगक्षेमधुरंधरस्य भजतां सद्बुद्धिदातुः प्रभोः
उत्साहोद्यमशालिनां कृतिमतां श्रेयः प्रदातुस्तथा ।
प्रत्यग्ज्ञानसुखात्मकस्य भवतः किं प्रार्थनीयं मया ?
श्रीश त्वं परमान्तरङ्ग इति मे चित्ते स्मराम्यन्वहम् ॥९४॥

तेजः कान्तिमयै विवेक कुसुमैः सद्धर्मसूत्रान्विता
सौरभ्यान्वित नीतिकर्ममणिभिः श्रीवैजयन्तीसमा ।
मालैषा स्वपरार्थसाधनहिता प्रोता[1] समुल्लासिनी
श्रीकृष्णाय समर्पिता भवतु वां श्रेयस्करी हृत्प्रिया ॥९५॥

इति गार्गिलोपाह्वेन श्रीदामोदरात्मजेन महादेव शर्मणा विरचिता स्वराज्य-प्रबोध-माला सम्पूर्णा ।



श्रीमधुसूदनसरस्वतीकृत कुछ सुन्दर श्लोक

उपर्युक्त स्वामीजी ने अपनी भगवद्गीताव्याख्या में श्रीकृष्ण भगवान् के वर्णनरूप सुन्दर श्लोक रचे हैं वह नीचे दिये जाते हैं :—

त्रयोदश अध्याय के आरम्भ में :—

ध्यानाभ्यास वशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियम्
ज्योतिः किंचन योगिनो यदि परं पश्यंति पश्यंतु ते ।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरम्
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं महो धावति ॥१॥

---

१ प्रोता = रची, बनाई ।

चतुर्दश अध्याय के अन्त में

परार्कृतनमद्बन्धं परंब्रह्म नराकृति ।
सौन्दर्यसारसर्वस्वं वन्दे नन्दात्मजं महः ॥ २ ॥

पञ्चदश अध्याय के अन्त में

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥ ३ ॥

और भी कुछ सुभाषित

दोर्भ्यां दोर्भ्यां व्रजंतं व्रजसदनगणाद्वा[redacted]नतः प्रोल्लसंतम्
मन्दं मन्दं हसंतं मधुमधुरगिरा मेति मेति ब्रुवन्तम्
गोपालीपाणितालीतरलितवलयध्वानमुग्धांतरालम्
वन्दे तं देवमिन्दीवरदलविमलश्यामलं नन्दबालम्

मातः, किं यदुनाथ, देहि चषकं[1], किं तेन, पातुंपयः
सद्योनास्ति, कदाभवेन्निशि, निशा का, सान्धकारोदये ।
आमील्याक्षियुगं निशाप्युपगता, देहीति मातुः पुन-
र्वक्षोजाम्बरकर्षणोद्यतकरः कृष्णः स पुष्णातु वः ॥

कृष्णेनाम्ब गतेन रन्तुमधुना मृद्भक्षिता स्वेच्छया
सत्यं कृष्ण ? किमेष आह मुसली[2] ? मिथ्याम्ब पश्याननम् ।
व्यादेहीति[3] विकासिते च वदने दृष्ट्वा समस्तं जग-
न्माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात्स वः श्रीपतिः ॥

---

१ प्याला २ बलभद्र ३ खोलो

श्रीसमर्थ रामदास कृत

मन को बोध

इस हृदयग्राही उपदेश के श्लोकों की संख्या २०५ है जिसका सुन्दर भाषान्तर आदरणीय डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र ने किया है। इनमें से कुछ

---

१ आधुनिक पाश्चिमात्य वैज्ञानिकों की धारणा है कि हमारी निद्रावस्था में, जैसी हृदय, रुधिराभिसरण और श्वासोच्छ्वासादि क्रियाएँ चलती रहती हैं, ठीक उसी प्रकार हमारे मन में संकल्प विकल्पों के ताने और बाने बुनते रहने की क्रियाएँ भी चलती रहती हैं। क्योंकि मन भी शरीर का एक अविच्छिन्न भाग है और शरीर की जीवनपोषणादि (Metabolism की) क्रियाएँ जैसी अविराम चलती रहती हैं उसी प्रकार मनोविकास की क्रियाएँ भी निद्रा में चलती रहती हैं। देखिए Philosohby in a new key by Lusanne. K. Langer. पृष्ठ २६ तथा ३३। बहुत से विद्वानों ने अनुभव किया है कि जिन विकट प्रश्नों का हल, उनकी जागृत अवस्था में उन्हें नहीं सूझा था, अच्छी निद्रा के बाद उनको सहजता से हो गया! एवं मनको भी उदार विचारों से पोषण भरण करने की बड़ी आवश्यकता है, ताकि निद्रा में उसका सुन्दर विकास होता रहे। शरीर का न्याय उसे भी लागू होता है।

प्राचीन ऋषियों ने भी बताया है कि हमारे मन का कार्य, हमारी निद्रा में भी होता रहता है, और इस दृष्टि से उन्होंने परमात्मा से शुभ संकल्पों के लिए प्रार्थनाएँ रची हैं, देखिए पृष्ठ २०।

छान्दोग्य उपनिषद् में 'मनोऽस्य दैवं चक्षुः' (८-१२-५) पर व्याख्या करते हुए श्री शंकराचार्य लिखते हैं 'मनस्तु त्रिकालविषयोपलब्धिकरणं मृदितदोषं दैवं चक्षुरुच्यते'।

एवं श्रीरामदास ने भी मन का, प्रेम से अनुनय करते हुए उसको मनभावन उपदेश किया है।

२ मिलने का पता : प्रकाशक मो. मा. खरे रामदासपेठ नागपुर म. प्रान्त

चुने हुए श्लोक सभाषांतर नीचे दिए जाते हैं।

मनाचे श्लोक	भाषान्तर 'हृदयबोध'
गणाधीश जो ईश सर्वां गुणांचा।	गुणाधीश स्वामिन्! गणाधीश नाम
मुळारंभ आरम्भ तो निर्गुणाचा।	अगुण ब्रह्म के आदि रूप! प्रणाम।
नमूं शारदा मूलचत्वार वाचा।	नमो शारदा! आदिवाणी स्वरूप;
गमो पंथ आनंत या राघवाचा॥	मिले रामका मार्ग अक्षय अनूप॥१॥
मना! सज्जना भक्तिपंथेंचि जावें।	सुजन मन! सदा राम के पथ में जाओ
तरी श्रीहरी पाविजेतो स्वभावें।	तो तुम श्रीहरी को सहज में हि पाओ।
जनीं निंद्य तें सर्व सोडूनि द्यावें।	जो हो लोक में निंद्य, तुम उसको छोडो
जनीं वंद्य तें सर्व भावें करावें॥	जो हो वंद्य, उस तत्त्व से भाव जोडो॥२॥
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा।	सबेरे सदा राम का ध्यान कीजै
पुढें वैखरी राम आधी वदावा।	तथा कण्ठ से राम का नाम लीजै।
सदाचार हा थोर सांडू नये तो।	सदाचार को जो नहीं त्यागता है
जनीं तोचि तो मानव धन्य होतो॥	जगत् में वही नर कहाता बड़ा है॥३॥
मना वासना दुष्ट कामा न ये रे।	हृदय! वासना दुष्ट-कामा न होवे
मना सर्वथा पापबुद्धी नको रे।	हृदय! पाप की बुद्धि को तू न ढोवे।
मना धर्मता नीति सोडूं नको हो।	हृदय! धर्म की नीति को तू न त्यागे
मना अंतरीं सारवीचार राहो॥	हृदय! सद्विवेक-प्रभा नित्य जागे॥४॥
मना पापसंकल्प सोडून द्यावा।	सदा पाप-संकल्प को दूर कीजै
मना सत्य संकल्प जीवीं धरावा।	सदा सत्य संकल्प पै चित्त दीजै।
मना कल्पना ते नको वीषयाची।	विषय वासना-कल्पना भी न आवे
विकारें घडे हो जनी सर्व छी छी॥	बिकारी यहाँ लोक-निन्दा हि पावे॥५॥

नको रे मना क्रोध हा खेदकारी । करो क्रोध को दूर है खेदकारी
नको रे मना काम नानाविकारी । तथा काम त्यागो, बड़ा है विकारी ।
नको रे मना सर्वथा अंगिकारूं । न हो मत्त मद से कि है नाशकारी
नको रे मना मत्सरू दंभभारू ॥ हटा भार दो दम्भ मत्सर का भारी ॥६॥

मना श्रेष्ठ धारिष्ट जीवीं धरावें । सदा चित्त में धैर्य ही को गहो मन !
मना बोलणें नीच सोशीत जावें । कड़ी बात भी शान्ति ही से सहो मन !
स्वयें सर्वदा नम्रवाचे वदावें । सदा नम्र वाणी सभी से कहो मन
मना सर्व लोकांसि रे नीववावें ॥ सभी को इसी भांति आनद दो मन ॥७॥

देहे त्यागितां कीर्ति मागें उरावी । मिटे तो मिटे तन् न यश मिटने पाये
मना सज्जना हेचि क्रीया धरावी । सुजन मन ! करो काम ऐसे सुहाये ।
मना चंदनाचे परी त्वां झिजावें । पिसो चाहे चन्दन से तुम कष्ट सहकर
परी अंतरीं सज्जना नीववावें ॥ करो शान्त सन्तुष्ट सज्जन का अन्तर ॥८॥

सदा सर्वदा प्रीति रामीं धरावी । सदा सर्वदा राम में प्रीति कीजै
दुःखाची स्वयें सांड जीवीं करावी । स्वयं चित्त से दुःख को त्याग दीजै ।
देहेदुःख तें सूख मानीत जावें । जो हो देह का कष्ट सुख उसमें मानो
विवेकें सदा स्वस्वरूपीं भरावें ॥ विवेकस्वरूपी सदा निज को जानो ॥९॥

जनीं सर्व सूखी असा कोण आहे । यहां कौन है, सर्व सुख जो कि पाले,
विचारी, मना तूंचि शोधूनि पाहे । विवेकी, तुही शोध ऐसा लगा ले ।
मना त्वाचि रे पूर्वसंचीत केलें । किया पूर्व संचित हृदय ! कर्म जैसा
तया सारखे भोगणें प्राप्त झालें ॥ हुआ प्राप्त है तुझको भव भोग वैसा ॥१०॥

मना मानसीं दुःख आणू नको रे । हृदय ! चित्त में दुःख को मत बुला रे
मना सर्वथा शोक चिंता नको रे । हृदय ! सर्वथा शोक चिन्ता न ला रे ।
विवेकें देहेबुद्धि सोडूनि द्यावी । विवेकी ! हटा देह-बुद्धित्व-रोग
विदेहीपणें भुक्ति भोगीत जावी ॥ विदेही-पने से परा भुक्ति भोग ॥११॥

दिनानाथ हा राम कोदण्डधारी । धनुर्धर प्रभू राम, दीनों के स्वामी
पुढें देखतां काळ पोटीं थरारी । उन्हें देख होता है यम भी प्रणामी ।
मना वाक्य नेमस्त हें सत्य मानी । निरपवाद है सत्य ही शास्त्रबानी
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी ।। उपेक्षा करेंगे न दासाभिमानी ।।१२।।

समर्थाचिया सेवका वक्र पाहे । समर्थ-प्रभू-भक्त को वक्र देखे
असा सर्व भूमंडळीं कोण आहे ?। हुआ कौन ऐसा कहां, कौन लेखे ?
जयाची लिळा वर्णिती लोक तीह्नी । त्रिलोकी में लीला विजय की बखानी
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी ।। उपेक्षा करेंगे न दासाभिमानी ।।१३।।

सदा सर्वदा देव सन्नीध आहे । निकट हैं सदा सर्वदा वे निरामय
कृपाळूपणें अल्प धारिष्ट पाहे । जो कुछ धैर्य हो तो मिलेंगे दयामय ।
सुखानन्द आनन्द कैवल्यदानी । सुखानन्द आनन्द कैवल्यदानी
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी ।। उपेक्षा करेंगे न दासाभिमानी ।।१४।।

सदा देवकाजीं झिजे देह ज्याचा[1] । सदा देव के कार्य में देह लग्न
सदा रामनामें वदे नित्य वाचा । सदा राम के नाम में जीभ मग्न ।
स्वधर्मेंचि चाले सदा उत्तमाचा । सदा जो स्वधर्मस्थ है तत्त्वज्ञानी
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा ।। यही राम का दास है धन्य प्राणी ।।१५।।

---

१ श्रीमद्भगवद्गीता के सिद्धान्त से परमात्मा के कार्यों को करने वाला पुरुष ही 'अनन्यभक्त' कहलाता है । श्री यदुनाथ कहते हैं :—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः
निर्वैरः सर्व भूतेषु यः स मामेति पाण्डव
(गी. अ. ११ श्लो. ५५)

परमात्मा के इच्छित कार्य तो वे ही हैं जिनसे समाज का धारण, सुरक्षा तथा प्रगति बनती है । प्राणिमात्र सुखी रहे और मानवता की सर्वांगीण

सदा बोलण्या सारिखें चालताहे । स्वयं वह करे जो कि मुख से बखाने
अनेकीं सदा एक देवासि पाहे । अनेकों में हैं एक प्रभू यह जो जाने;
सगूणीं भजे लेश नाहीं भ्रमाचा । सगुण को भजे, हो न भ्रम की निशानी
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा ॥ यही राम का दास है धन्य प्राणी ॥१६॥

प्रगति, आत्मबल से होती रहे यही परमात्मा को संतोष-जनक हो सकता है। ऐसे कार्यों में तत्पर होने के लिए ही (अर्थात् प्रथमतः दुष्टों का शासन और धर्म के रक्षण के लिए ही) भक्तोत्तम अर्जुन को श्री भगवान् ने उपदेश दिया था। परन्तु काल की गति कुछ विचित्र है। आज हम भक्ति का इन बातों से कुछ सम्बन्ध है मानने को तयार नहीं हैं!

भक्तिमार्ग का सामाजिक स्वास्थ्य तथा प्रगति से बड़ा निकट सम्बन्ध है। प्रायः संसार में जिन व्यवहारों को भक्ति कहते हैं वे केवल भक्तिमार्ग के फलक हैं, आरम्भ मात्र हैं, सच्ची भक्ति तो कोसों दूर है। निष्कलंक और निःस्वार्थ बुद्धि से परमात्मा को सन्तुष्ट करने वाले कार्यों को करते रहना ही अनन्या भक्ति तथा देवपूजा है। 'देवो भूत्वा देवानप्येति' (बृ. ४-१-२) का भी यही मर्म है। देव बन कर ही देव का कार्य सुन्दर हो सकता है। साधारण सेवक भाव से देव का कार्य ठीक नहीं हो सकता। देवता के इच्छित कार्यों को करने वाला पुरुष ही अन्ततो गत्वा देवतात्म भाव एवं मुक्ति को प्राप्त कर ले सकता है।

उपर्युक्त श्लोक में श्री समर्थ जी ने भी इसी श्री भगवद्गीता के उच्चतम उपदेश को जनता में प्रचलित कर, नयी जागृति उत्पन्न कर दी। उनके समय में देवकार्य ही देश तथा समाज के कल्याण का कार्य था। और इसी ऊँची नींव से उन्होंने राष्ट्र के कल्याण का कार्य कर दिखाया।

और यूँ देखा जाए, तो देव कार्य, देश कार्य और समाज स्वास्थ्य के कार्यों में कोई भेद ही नहीं हो सकता। तत्त्वज्ञान की यही शिक्षा है, भेद मानना हमारी भूल है।

क्रमी वेळ जो तत्त्वचिंतानुवादें । करे हर घड़ी तत्त्व चिन्तानुवाद
नं लिंपे कदा दंभवादें विवादें । न हो दम्भ या व्यर्थ वादा विवाद ।
करी सूखसंवाद जो ऊगमाचा । रहे ब्रह्म चिन्ता में तल्लीन बानी
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा ॥ यही राम का दास है धन्य प्राणी ॥१७॥

दिनाच्या दयाळू मनाचा मवाळू । दयापाल दीनों का मन का मयालू
स्नेहाळू कृपाळू जगीं दासपाळू । वो दासों का है पाल, प्रेमी कृपालू ।
तया अंतरीं क्रोधसंताप कैंचा । न हो चित्त में क्रोध-सन्ताप हानी
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा ॥ यही राम का दास है धन्य प्राणी ॥१८॥

न वेंचे कदा ग्रंथिंचा अर्थ कांहीं । न कुछ गांठ से खर्च होता कहीं है
मुखें नाम उच्चारितां कष्ट नाहीं । लिया नाम तो मुख को भी दुःख नहीं है ।
महा थोर संसारशत्रू जिणावा । मगर काटता है भवशत्रु-घेरे
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा ॥ करो राम की चित्त ! चिंता सवेरे ॥१९॥

बहू चांगलें नाम या राघवाचें । भला नाम श्रीराम जी का विमल है
अती साजिरें स्वल्प सोपें फुकाचें । बिना दाम का स्वल्प, सुन्दर, सरल है ।
करी मूळ निर्मूळ घेतां भवाचें । जपे नाम, निर्मूल हो 'भव' यह कच्चा
जिवा मानवा हेंचि कैवल्य साचें ॥ मनुष्यों का यह ही है कैवल्य सच्चा ॥२०॥

विवेकें क्रिया आपुली पालटावी । विवेकी बनो, कुक्रिया लौट दो तुम
अती आदरें शुद्ध क्रीया धरावी । जो है शुद्ध सन्मार्ग सादर गहो तुम
जनीं बोलण्यासारिखें चाल बापा । जो कहते हो वह आप करके दिखाओ
मना कल्पना सोडि संसारतापा ॥ है संसारदा कल्पना, तुम हटाओ ॥२१॥

तुटे वाद संवाद तेथें करावा । हटे वाद, संवाद ऐसा गहो रे
विवेकें अहंभाव हा पालटावा । विवेकी ! अहंभाव कुछ भी न हो रे ।
जनीं बोलण्या सारिखें आचरावें । कहे बुद्धि जो, यदि वही आचरेगी
क्रियापालटे भक्ति पंथेंचि जावें ॥ क्रिया शुद्ध होगी, सुभक्ती मिलेगी ॥२२॥

नसे गर्व अंगीं सदा वीतरागी । न हो गर्व तन में सदा वीतरागी
क्षमाशांतिभोगी दयादक्षयोगी । क्षमा शांति भोगी दयादक्ष योगी ।
नसे लोभ ना क्षोभ ना दैन्यवाणा । न हो लोभ न क्षोभ ना दीन वाणी
इंहीं लक्षणीं जाणिजे योगिराणा ॥ उसे जानिये योगिराज प्रमाणी ॥२३॥

बरा निश्चयो शाश्वताचा करावा । जो शाश्वत है उस पर हि निश्चय जमाओ
म्हणे दास संदेह तो नीरसावा । कहे दास सन्देह अपना हटाओ ।
घडीनें घडी सार्थकाची करावी । हृदय ! हरघड़ी अपनी सार्थक हि कीजै
सदा संगती सज्जनाची धरावी ॥ सदा सन्त सत्संग में चित्त दीजै ॥२४॥

देहेबुद्धि ते ज्ञानबोधें त्यजावी । तजो देह की बुद्धि सद्ज्ञान से तुम
विवेकें तया वस्तुची भेटि घ्यावी । विवेकी ! तो सद्वस्तु सम्मान से तुम ।
तदाकार हे वृत्ति नाहीं स्वभावें । चिदाकारता न स्वतः ही उदित है
म्हणोनी सदा तेंचि शोधीत जावें ॥ अतः उसके हित यत्न करना उचित है ॥२५॥

असे सार साचार तें चोरिलें से । असल सार जो तत्त्व वह गुप्त सा है
इहीं लोचनी पाहतां दृश्य भासे । दृगों से तो बस दृश्य ही भासता है ।
निराभास निर्गूण तें आकळेना । निराभास निर्गुण गहा है न जाता
अहंतागुणें कल्पितां ही कळेना ॥ अहंता के गुण से न वह दीख पाता ॥२६॥

तिन्ही लोक जेथून निर्माण झाले । त्रिलोकी त्रिदेवों को जिसने रचा है
तया देवरायासि कोणी न बोले । न उस पर-पिता को कोई पूछता है ।
जगीं थोरला देव तो चोरला से ! यहाँ श्रेष्ठ होकर यहीं वह छिपा है
गुरूवीण तो सर्वथा ही न दीसे ॥ गुरू के बिना क्या कहीं वह दिखा है ? ॥२७॥

गुरू पाहतां पाहतां लक्षकोटी । गुरू नामधारी करोड़ों यहाँ हैं
बहूसाल मंत्रावळी शक्ति मोटी । लिये मंत्र तंत्रावली शक्तियाँ हैं ।
मनीं कामना चेटकें घात पाता । चपल-चित्त वाचाल चेटक-विधाता
जनीं व्यर्थ रे तो नव्हे मुक्ति दाता ॥ सभी व्यर्थ हैं रे ! न वे मुक्ति दाता ॥२८॥

सदा सर्वदा राम सन्नीध आहे। सदा राम तो पास ही है तुम्हारे
मना सज्जना सत्य शोधूनि पाहें। करो सत्य का शोध तुम्ही चित्त प्यारे।
अखंडीत भेंटी रघूराजयोगू। अखंडित है रघुराज का तुम से योग
मना सांडि रे मीपणाचा वियोगू॥ हृदय! हो सका यदि अहंता वियोग॥२९॥

मही निर्मिली देव तो आकळावा। उसे देख, जो सृष्टि का है विधाता
जया पाहतां मोक्ष तत्काळ जीवा। जिसे जीव लख मुक्ति तत्काल पाता।
तया निर्गुणा लागिं गूणी पहावे। अगुण के लिये यदि गुणों को गहोगे
परी संग सोडूनि सूखी असावे॥ असंगी रहो तो सुखी सत्य होंगे॥३०॥

वसे हृदयीं देव तो कोण कैसा?। 'बसा जो हृदय में वो है देव कैसा?'
पुसे आदरे साधक प्रश्न ऐसा। सुआदर से साधक ने पूछा जो ऐसा।
देहे टाकितां देव कोठें रहातो। 'छुटी देह तो देव रहता कहाँ है,
परी मागुती ठाव कोठे पहातो?॥ पुनर्वास अपना वो गहता कहाँ है?'॥३१॥

वसे हृदयीं देव तो जाण ऐसा। 'बसा जो हृदय में' वो है देव ऐसा
नभाचे परी व्यापकू जाण तैसा। परात्पर ये आकाश व्यापक है जैसा।
सदा संचला येत ना जात कांहीं। सदा स्थीर है वह देव, आता न जाता
तयावीण कोठे रिता ठाव नाहीं॥ न उसके बिना स्थल कहीं लक्ष्य आता॥३२॥

नभीं वावरे जो अणु रेणु कांहीं। परमरेणु के अणु जो भ्रमते कहीं हैं
रिता ठाव या राघवे वीण नाहीं। बिना राम के स्पष्ट वे भी नहीं हैं।
तया पाहतां पाहतां तेंचि जालें। उसे लख सभी हैं वही रूप पाते
तेथें लक्ष आलक्ष सर्वें बुडालें॥ वहाँ लक्ष्य दुर्लक्ष्य सब हैं समाते॥३३॥

मना गूज रे तूज हें प्राप्त जाले। हृदय! तुझको यह गोप्य यदि ज्ञात होवे
परी अंतरीं पाहिजे यत्न केले। प्रयत्नों में अंतर न कुछ होने पावे।
सदा श्रवणें पाविजे निश्चयासी। न खो वेद वाक्यों में विश्वास को तू
धरी सज्जनीं संगती धन्य होसी॥ सदा सन्त-सत्संग कर धन्य हो तू॥३४॥

राष्ट्रीय गीत

करना है निर्माण

करना है निर्माण हमें नव भारत का निर्माण
हमें हमारी देश की जग में बढ़ानी होगी शान। करना है ०॥
यही हमारी सब धरती हो खेतों से हरियाली
फूल-फलों से झूम रही हो बन बन डाली डाली
नदी नहर सरवर बरखा के जल से बरसे धान। करना है ०॥
हिमगिरि के ऊँचे शिखरों पै फूल चढ़ाने जायें
रत्नाकर के अतल नीर को खोज रत्न धन पायें
गाएँ बन कुञ्जों की मनहर, सुन्दरता के गान। करना है ०॥
कोई न भेद रहें आपस में हम सब भाई भाई
भारत की सब सन्तानों में सच्ची प्रेम सगाई
सत्य अहिंसा के प्रण से पत्थर में प्रगटें प्राण। करना है ०॥

—पिनाकिन ठाकोर

अभियान गीत

हिमाद्रि तुङ्ग शृङ्ग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती—

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है—बढ़े चलो बढ़े चलो !

असंख्य कीर्तिरश्मियाँ
विकीर्ण दिव्यहार-सी
सपूत मातृ-भूमि के
रुको न शूर साहसी !

अराति सैन्य सिन्धु में—सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो बढ़े चलो !

—जयशंकर प्रसाद

वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्
शस्यश्यामलां मातरम् ।
शुभ्र ज्योत्स्ना-पुलकित यामिनीम्,
फुल्लकुसुमित-द्रुमदलशोभिनीम्,
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम् ॥

त्रिंशकोटिकण्ठ-कलकल-निनाद कराले
द्वि त्रिंशकोटिभुजैर्धृतखरकरवाले,

अबला केन मा एत बले
बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीम्
रिपुदल वारिणीं मातरम् ॥

तुमि विद्या तुमि धर्म्म,
तुमि हृदि तुमि मर्म्म,
त्वं हि प्राणाः शरीरे ।
बाहुते तुमि मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारि प्रतिमा गड़ि मन्दिरे मन्दिरे ॥

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी
कमला कमल-दल-विहारिणी
वाणी विद्यादायिनी नमामि त्वाम्
नमामि कमलां अमलां अतुलाम्
सुजलां सुफलां मातरम्,
वन्दे मातरम् ।
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्
धरणीं भरणीं मातरम् ॥

—बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

भारत भाग्य विधाता

जनगणमन-अधिनायक जय हे भारत-भाग्यविधाता ।
पंजाब सिंधु गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल वंग
विंध्य हिमाचल यमुना गंगा उच्छल जलधितरंग
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिस माँगे,
गाहे तव जयगाथा ।
जनगण मंगलदायक जय हे भारत-भाग्यविधाता ।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे ॥

अहरह तव आह्वान प्रचारित, सुनि तव उदार वाणी
हिंदु बौद्ध सिख जैन पारासिक मुसलमान ख्रिस्टानी
पूरब-पश्चिम आसे तव सिंहासन-पाशे,
प्रेमहार है गाथा ।
जनगण-ऐक्याविधायक जय हे भारत-भाग्यविधाता ।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे ॥

पतन-अभ्युदय-बंधुर पन्था, युगयुगधावित यात्री,
हे चिरसारथि, तव रथचक्रे मुखरित पथ दिनरात्रि ।
दारुण-विप्लव-माझे तव शंखध्वनि बाजे,
संकटदुःखत्राता ।
जनगण पथपरिचायक जय हे भारत-भाग्यविधाता ।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे ॥

घोर तिमिरघन निबिड़ निशीथे पीड़ित मूर्छित देशे
जाग्रत छिल तव अविचल मंगल नतनयने अनिमेषे।
दुःस्वप्ने आतंके रक्षा करिले अंके,
स्नेहमयी तुमि माता।
जनगण दुःखत्रायक जय हे भारत-भाग्यविधाता।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे॥

रात्रि प्रभातिल, उदिल रविच्छाव पूर्व-उदयागिरिभाले,
गाहे विहंगम, पुण्य समीरण नवजीवन रस ढाले।
तव करुणारुण-रागे निद्रित भारत जागे
तव चरणे नत माथा।
जय जय जय हे, जय राजेश्वर, भारत-भाग्यविधाता।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे॥



आत्म विज्ञान

(पृष्ठ संख्या ४०६—क्राउन १/१६ साइज)

'अद्वैत विज्ञान' के महत्वपूर्ण विषय पर एक अनमोल पुस्तक

विद्वानों की सुन्दर सम्मतियाँ

लेखक तथा प्रकाशक :- श्री. म. दा. गाडगील
इंजीनियर, आनंद विलास, काचीगुडा, हैदराबाद-दक्षिण.

पुस्तक ऊपर के पते पर मिल सकती है। मूल्य ५-०-० रुपया

बम्बई के 'धर्मयुग' दिनांक १०-१-१९५४ की संख्या में प्रकाशित सम्मतिः—

उपर्युक्त पुस्तक प्राचीन वेदान्त का आधुनिक अध्ययन है। शंकराचार्य को लेकर लोगों ने इतना भ्रम और इतनी ऊटपटांग धारणाएँ फैला दीं हैं कि आज ब्रह्मसूत्र का अपना मौलिक अस्तित्व ही नहीं रहा। केवल कर्मण्य वेदान्त की उक्ति प्रत्युक्तियों का जाल ही वेदान्त बन गया है। द्वैताद्वैत के अनार्ष सिद्धान्तों का ऐसा छप्पर लोगों ने वेदान्त सूत्र के वासों पर छा दिया है कि वासों का अस्तित्व ही छिप गया है।

श्री गाडगील ने अपनी इस पुस्तक में अहं ब्रह्मास्मि, जगत् मिथ्या और जगत् का कारण अज्ञान, आदि प्रचलित अनिष्टकारी वेदान्तीय भ्रांतियों का निराकरण करके एक स्वस्थ और बुद्धिगम्य शांकर वेदान्त, जनता के सामने रखा है। २१६ पृष्ठों का पहला प्रबंध आत्म विज्ञान विषय से ही ओतप्रोत है। दूसरा निबन्ध ईशावास्योपनिषद् पर है। जिसमें उपनिषद् का सरल हिन्दी अनुवाद दिया गया हैं। अनेक परिशिष्टों में विभिन्न मतमतान्तरों का अध्यात्म विषयक अनुशीलन किया गया है। अनेकों उपयोगी विवरण पत्रक देकर लेखक ने विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। अत्यंत परिश्रम से लिखा गया यह विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ; वास्तव में मनन और अनुशीलन योग्य है। अध्यात्म विद्या के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए यह पठनीय है। भाषा की दुरूहता यदि उसमें न होती तो संभवतः वह अधिक सुबोध हो सकती। लेखक की विषय प्रतिपादन शैली बड़ी तर्कपूर्ण और हृदयहारिणी है। ऐतिहासिक घटना क्रम

को ध्यान में रखते हुए उन्होंने भारत के सामाजिक विकास के साथ आध्यात्मिक विचारधारा का जो समन्वय इस ग्रन्थ में किया है वह सराहनीय है। आशा है प्रकाशक अगले संस्करण में पुस्तक को अधिक जनगम्य बनाने का प्रयत्न करेंगे।

मद्रास के 'हिन्दू' पत्र के दिनांक २८-३-१९५४ की संख्या में प्रकाशित सम्मति :—

Atma-Vigyan or the Science of the Soul is a scholarly treatise on the Adwaita Philosophy by Sri M. D. Gadgil who has made a deep study of the subject both from the philosophical and practiacal points of view. The book was originally written in Marathi and has been translated into Hindi by the author himself for the benefit of those who know the Rashtrabhasha...... ....The auther is a great devotee of Sri Shankara and refutes all the arguments that have been put forward against Shankara's theory of Mayavad. He is of the opinion that even some of the commentators of Shankara, like Sri Vachaspathy Misra and Sri Madhusudan Saraswathy have made mistakes in expounding Shankara's theory of Adwaitavada and that is why the great Acharya is sometimes misunderstood. The aim of the author in writing this book is to bring to light the unifying power of Hindu Dharma and he contends that the more the secret laws of nature are revealed to us by the discoveries of science, the more we shall be able to realise the power of the unique Atmajyoti. The book will be of great interest to students of philosphy and the illustrating charts given in the book will help the reader to understand clearly the various points explained by the author.

AVADHNANDAN